ऋग्वेदीय वाङ्मय में मनोविज्ञान

एम.फिल., वैदिक अध्ययन की उपाधि

हेतु प्रस्तुत

लघु–शोध–प्रबंध

शोध निर्देशक

डॉ० देवेन्द्र सिंह

प्रभारी विभागाध्यक्ष एवं सहायक प्राध्यापक

वैदिक अध्ययन विभाग

शोधार्थी

नीतेश कुमार मिश्र

एम.फिल., वैदिक अध्ययन

नामांकन सं. En17-00017

भाषा, साहित्य एवं कला संकाय

साँची बौद्ध-भारतीय ज्ञान अध्ययन विश्वविद्यालय,

बारला, रायसेन (म. प्र.)

2019

शोधार्थी द्वारा घोषणा-पत्र

मैं एतद् द्वारा घोषणा करता हूँ कि यह शोध कार्य **"ऋग्वेदीय वाङ्मय में मनोविज्ञान"** डॉ. देवेन्द्र सिंह, सहायक प्राध्यापक (शोध निर्देशक) केंद्र : भाषा, साहित्य एवं कला संकाय के अंतर्गत संस्कृत एवं वैदिक अध्ययन विभाग, साँची बौद्ध - भारतीय ज्ञान अध्ययन विश्वविद्यालय, बारला, रायसेन के अधीन किया गया है। यह मेरा मौलिक शोध कार्य है। जिसे विभागीय शोध समिति द्वारा अनुमोदित किया गया है।

मैं यह भी घोषणा करता हूँ कि मेरी जानकारी के अनुसार इस लघु शोध प्रबंध में किसी प्रकार का कोई ऐसा तथ्य उद्धृत नहीं किया गया जो इस विश्वविद्यालय या किसी अन्य विश्वविद्यालय के समक्ष किसी उपाधि हेतु प्रस्तुत किया गया हो।

साथ में यह भी घोषणा करता हूँ कि -

1. मैंने विश्वविद्यालय अनुदान आयोग अधिनियम 2009 के मापदण्डों के अनुसार एक सत्र का कोर्स वर्क सफलतापूर्वक पूर्ण कर लिया है।
2. मैंने लघु-शोध-प्रबंध अंतिम रूप से जमा करने से पूर्व विभागीय शोध समिति के समक्ष प्रस्तुति भी दी है और दिए गये निर्देशों / सुझावों के आधार पर संशोधनों को सफलतापूर्वक शामिल किया है।
3. मैंने लघु-शोध-प्रबंध से सम्बन्धित एक शोध-पत्र ISSN/रेफर्ड-जर्नल में प्रकाशित कराया है। जिसकी छायाप्रति लघु-शोध-प्रबंध के अंत में संलग्न है। मैंने राष्ट्रीय संगोष्ठी में शोध पत्र भी प्रस्तुत किया है।
4. मेरे द्वारा प्रस्तुत लघु-शोध-प्रबंध में कोई भी सामग्री, किसी अन्य शोध से या किसी प्रकाशित सामग्री का हिस्सा नहीं है, यदि Plagiarism के अंतर्गत कोई भी सामग्री पायी जाती है तो उसके लिए मैं स्वयं उत्तरदायी रहूँगा।

स्थान ....　　　　शोधार्थी हस्ताक्षर

दिनांक.......................　　　　नीतेश कुमार मिश्र

(साँ.बौ.भा.ज्ञा.अ.वि.)

प्रमाण-पत्र

यह प्रमाणित किया जाता है कि लघु-शोध-प्रबंध जिसका विषय "**ऋग्वेदीय वाङ्मय में मनोविज्ञान**" श्री नीतेश कुमार मिश्र द्वारा किया गया शोध कार्य है, जिसे साँची बौद्ध भारतीय ज्ञान अध्ययन विश्वविद्यालय में एम. फिल.उपाधि हेतु मेरे निर्देशन में पूर्ण किया गया है।

मेरी जानकारी के अनुसार

1. यह शोधार्थी का मौलिक कार्य प्रतीत होता है।
2. यह शोध कार्य यू.जी.सी.के दिशा निर्देशों को पूरा करता है।
3. विश्वविद्यालय की एम.फिल से सम्बन्धित अध्यादेश की आवश्यकताओं को पूरा करता है।

स्थान.......................	हस्ताक्षर

दिनांक	विभागाध्यक्ष

<u>सर्वाधिकार</u>

मैं, **नीतेश कुमार मिश्र** एतद् द्वारा घोषणा करता हूँ कि साँची बौद्ध-भारतीय ज्ञान अध्ययन विश्वविद्यालय, बारला, रायसेन द्वारा इस लघु-शोध-प्रबंध **"ऋग्वेदीय वाङ्मय में मनोविज्ञान"** को शैक्षणिक/अनुसंधान उद्देश्य से इलेक्ट्रॉनिक या प्रिंट प्रारूप में उपयोग करने के अधिकार होगें।

नोट– शोधार्थी अथवा अन्य के द्वारा लघु-शोध-प्रबंध के आँकड़ों /निष्कर्षों का प्रयोग व्यक्तिगत रूप से किया जा सकेगा, बशर्ते कि यथा स्थान विश्वविद्यालय के सर्वाधिकार का उल्लेख किया जाए।

स्थान.......................   हस्ताक्षर

दिनांक ....   नीतेश कुमार मिश्र

(साँ.बौ.भा.ज्ञा.अ.वि.)

अनुक्रमणिका

		पृ.सं.
	भूमिका	i-iv
अध्याय प्रथम	**ऋग्वैदिक वाङ्मय का परिचय**	01–62
	1.1 पौर्वत्य एवं पाश्चात्य दृष्टिकोण 1.2 भारतीय मनस् तत्व की अवधारणा 1.3 आधुनिक मनोविज्ञान	
अध्याय द्वितीय	**वेद में मनोविज्ञान तथा विश्लेषण**	63–120
	2.1 ऋग्वेदीय वाङ्मय में मनस् तत्व का विश्लेषण 2.2 औपनिषदिक मनस् तत्व	
तृतीय अध्याय	**पाश्चात्य मनोविज्ञान एवं भारतीय मनोविज्ञान का तुलनात्मक अध्ययन**	121–145
	3.1 पाश्चात्य मनोविज्ञान 3.2 प्राच्य एवं पाश्चात्य मनोविज्ञानों में समानता एवं भिन्नता	
	उपसंहार	146–151
	संदर्भ ग्रन्थ सूची	152–159
	परिशिष्ट	i – xi

भूमिका

भूमिका

भारतीय संस्कृति में वेद का विशेष महत्त्व दिया जाता है जिसमें चारों वेदों में मन्त्रों की संख्या व ज्ञान के विवेचन की दृष्टि से ऋग्वेद का विशेष महत्व दिया जाता है। जिसे विश्व में प्रथम रचना के रूप में स्वीकार किया जाता है। जिसमें ज्ञान-विज्ञान, आत्मा-परमात्मा, प्राण, मन, राष्ट्र आदि का विशेष वर्णन प्राप्त होता है। प्राचीन काल से ही मनुष्य को ऋषियों के द्वारा धर्म-अर्थ-काम और मोक्ष आदि चार पुरुषार्थों का यथावत पालन कर, सुव्यवस्थित जीवन व्यतीत करने का निर्देश किया गया है। जिसमें अंतिम पुरुषार्थ मोक्ष को समस्त मनुष्य के द्वारा प्राप्त करने प्रयास किया जाता रहा है जिससे कि इस संसार सागर के बंधन से छूटकर मुक्ति को प्राप्त हो सके। इस संसार सागर से मुक्ति हेतु ऋषियों के द्वारा मन को प्रमुख्य साधन बताया गया है और कहा गया है कि मन ही बंधन और मोक्ष का कारण है।

अत: प्रस्तुत लघु-शोध-प्रबन्ध का विषय भी मन से सम्बन्धित है जिसमें मेरे द्वारा "ऋग्वैदिक वाङ्मय में मनोविज्ञान" को प्रस्तुत किया गया है। जिसके अंतर्गत मन के स्वरूप का विवेचन किया गया है जिसके प्रथम अध्याय में मैंने ऋग्वैदिक वाङ्मय का परिचय दिया है जिसके प्रथम उप अध्याय में पौर्वात्य व पाश्चात्य दृष्टिकोण में वेद व ऋग्वेद का परिचय दिया गया है। द्वितीय उप अध्याय में भारतीय मनस् तत्त्व की अवधारणा का उल्लेख किया गया है जिसमें आयुर्वेद,योग और श्री अरविन्द के विशेष दृष्टिकोण में मन का स्वरूप प्रस्तुत किया गया है और तृतीय उप अध्याय में आधुनिक मनोविज्ञान के दृष्टिकोण में मन का विवेचन किया गया है जिसमें आधुनिक मनोविज्ञान का उद्भव और विकास का विस्तृत विवेचन किया गया है।

इस लघु-शोध-प्रबंध के द्वितीय अध्याय में वेद में मनोविज्ञान का विश्लेषण है जिसमें प्रथम उप अध्याय में ऋग्वेदीय वाङ्मय में मनस् तत्व का विश्लेषण है जिसके अंतर्गत मन के आवर्तन सूक्त के द्वारा मन के विभिन्न स्वरूप व सृष्टि उत्पत्ति में मन की सहभागिता व ज्ञान विज्ञान में मन के सहयोग का विस्तृत विवेचन किया गया है। द्वितीय उप अध्याय में औपनिषदिक मनस् तत्व का उल्लेख है जिसके अंतर्गत उपनिषदों में प्रमुख रूप से ऐतरेय उपनिषद्, बृहदारण्यक उपनिषद् छान्दोग्योपनिषद् के माध्यम से मन का उल्लेख किया गया है।

इस लघु-शोध-प्रबन्ध के तृतीय अध्याय में पाश्चात्य मनोविज्ञान एवं भारतीय मनोविज्ञान का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है जिसके प्रथम उप अध्याय में पाश्चात्य मनोविज्ञान का उद्भव और विकास तथा मन का स्वरूप देकार्ते और युंग आदि मनोवैज्ञानिकों के दृष्टिकोण में तथा उनके कुछ आविष्कारों का उल्लेख किया गया है। द्वितीय उप अध्याय में प्राच्य एवं पाश्चात्य मनोविज्ञान में समानता व भिन्नता दोनों ही दृष्टिकोणों में उल्ल्लेख किया गया है। लघु-शोध-प्रबंध के अंत में उपसंहार दिया गया है जिसके अंतर्गत सम्पूर्ण लघु-शोध-प्रबंध के अवलोकन के उपरान्त परिणाम स्वरूप प्राप्त तथ्यों की समीक्षा की गयी है।

सर्वप्रथम मैं अपनी आराध्या माता जगदम्बा भवानी दुर्गा के चरण कमलों में ब्रह्मांजली पूर्वक नमन करता हूँ। जिनकी असीम कृपा से इस शोध कार्य को पूर्ण करने में सफल हुआ हूँ।

संसार के सर्वप्रथम ग्रन्थ वेद के रचयिता उस आदि सर्वशक्तिमान् सर्वश्रेष्ठ सर्वान्तर्यामी सर्वज्ञ ब्रह्मवेत्ता परमपिता परमेश्वर के चरण कमलों में श्रद्धा सुमन अर्पित करता हूँ। जिनके ज्ञान रूपी आलोक से सम्पूर्ण जगत् अनादि काल से निरन्तर अज्ञान रूपी अन्धकार से प्रकाश की ओर अग्रसर हो रहा है। प्रस्तुत लघु-शोध–प्रबंध अत्यंत परिश्रम एवं लगन का कार्य है। जिस कार्य के लिए एक निश्चित योजना तथा मार्गदर्शन की अत्यंत आवश्यकता होती है। इस लघु-शोध-प्रबंध का कार्य मेरे स्वयं के सामर्थ्य से पूर्णता को प्राप्त नहीं हो पाता। अत: इस लघु-शोध-प्रबंध के कार्य में मेरे शोध निर्देशक परम पूज्य गुरुवर आचार्य **डॉ. देवेन्द्र सिंह** जी के सानिध्य व आशीर्वाद सदैव बना रहा

जिससे मेरा शोध प्रबंध कार्य संपन्न हो सका। ऐसे श्रद्धेय गुरु को मैं कोटि-कोटि प्रणाम करता हूँ। संस्कृत विभाग के सहायक प्राध्यापक **आचार्य डॉ. विश्वबन्धु** जी का मेरे शोध कार्य की पूर्ति में महनीय सहयोग रहा है उनको भी मैं हृदय से धन्यवाद ज्ञापित करता हूँ। प्रभारी अधिष्ठाता **डॉ.नवीन कुमार मेहता** तथा विश्वविद्यालय के समस्त शिक्षको को भी धन्यवाद व सादर प्रणाम करता हूँ।

अपने माता-पिता को अपने श्रद्धा सुमन अर्पित करता हूँ तथा अपने परिवार में मेरे अग्रज **दुर्गेश कुमार मिश्र** (अध्यापक अंग्रेजी डी.एस.एस.एस.बी) **डॉ बबलू पाल** और गणमान्य मित्रों में **आशीष, अजीत, नितिन कुमार गावकरे, ऋषिकांत भार्गव, रोशन कुमार भारती** आदि को भी धन्यवाद ज्ञापित करता है जिनके सहयोग से यह शोध-प्रबंध संपन्न हो सका।

साँची विश्वविद्यालय के पुस्तकालय प्रभारी डॉ. अमित ताम्रकर तथा हरीश असाटी, प्रकाश जी के प्रति तथा विश्वविद्यालय परिवार के प्रत्येक सदस्य को आभार ज्ञापित करता हूँ, जिन्होनें मुझे प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से सहयोग प्रदान किया ।

धन्यवाद

नीतेश कुमार मिश्र

(एम.फिल., वैदिक अध्ययन)

साँ.बौ.भा.ज्ञा.अ.वि. बारला, रायसेन

प्रथम अध्याय

ऋग्वैदिक वाङ्मय का परिचय

1.1 पौर्वत्य एवं पाश्चात्य दृष्टिकोण

1.2 भारतीय मनस तत्व की अवधारणा

1.3 आधुनिक मनोविज्ञान

प्रथम अध्याय

ऋग्वैदिक वाङ्मय का परिचय

वेद भारतीय ज्ञानगंगा के उत्स है। वेद अर्थात् ऐसा दीप्तिपुंज है जो अपनी दिव्य आभा से स्वयं भासित है और जिसके द्वारा समस्त वाङ्मय प्रकाशित है। विद् धातु से निष्पन्न वेद शब्द भारतीय परम्परा के अनुसार ज्ञान का वाचक है। संस्कृत व्याकरण के अनुसार वेद शब्द चार धातुओं से विभिन्न अर्थो में बनता है।

विदन्ति जानन्ति,विद्यन्ते भवन्ति, विन्दन्ति विन्दन्ते लभन्ते, विन्दन्ते विचारयन्ति सर्वे मनुष्याः

सर्वाः सत्यविद्याः यैर्येषु वा तथा विद्वांसश्चस भवन्ति ते वेदाः।[1]

आचार्य विष्णुमित्र ने वेद शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार की है-

विद्यन्ते ज्ञायन्ते लभ्यन्ते वा एभिर्धर्मादिपुरुषार्था इति वेदाः ।[2]

आचार्य सायण के अनुसार-

इष्टप्राप्त्यनिष्टपरिहारयोरलौकिकमुपायं यो ग्रन्थो वेदयति स वेदः।[3]

आचार्य सायण के अनुसार प्रत्यक्ष और अनुमान प्रमाण की सहायता से लौकिक विषयों का ज्ञान होता है। अलौकिक विषयों यथा- स्वर्ग,ब्रह्म, धर्म आदि का ज्ञान इन प्रमाणों के द्वारा नहीं हो सकता है। चूँकि इनका ज्ञान वेद के द्वारा ही होता है इसलिये अलौकिक विषयों के ज्ञान में वेद ही प्रमाण है। जैसा कि कहा गया है -

प्रत्यक्षेणानुमित्या वा यस्तूपायो न बुध्यते।

---

1 ऋग्वेदभाष्यभूमिका ,सम्पा.युधिष्ठिर मीमांसक,पृ.22

2 ऋग्वेद .प्रातिशाख्य. सम्पा.मंगलदेव शास्त्री,इण्डियन प्रेस लिमिटेड पृ.5

3 तैत्तिरिय भाष्य भूमिका .सम्पा.बलदेव उपाध्याय,पृ. 2

एनं विदन्ति वेदेन तस्माद् वेदस्य वेदता ॥[4]

आचार्य मनु के अनुसार वेद धर्म के मूलतत्वों को जानने का एकमात्र साधन है-

वेदोऽखिलो धर्ममूलम् ।[5]

आचार्य मनु ने वेद को समस्त ज्ञान का आधार मानकर उन्हें **सर्वज्ञानमय** कहा है

यः कश्चिद् कस्यचिद् धर्मो मनुना परिकीर्तितः

स सर्वोऽभिहितो वेदे ,सर्वज्ञानमयो हि सः।[6]

महर्षि पतञ्जलि ने भी महाभाष्य में कहा है-

ब्राह्मणेन निष्कारणो धर्मः षडङ्गो वेदोऽध्ययो ज्ञेयश्च ।[7]

वेद के लिए श्रुति, निगम, आगम, त्रयी, छन्दस्, आम्नाय, स्वाध्याय आदि शब्दों का भी प्रयोग होता है। वेद शब्द से वह ज्ञान अभिप्रेत है जिसको सर्वप्रथम ऋषि-महर्षियों ने आत्मसाक्षात्कार किया। इस परम्परा के प्रवर्तन के सम्बध में निरुक्तकार यास्क ने कहा है-

साक्षत्कृतधर्माण ऋषयो बभूवुः। तेऽवरेभ्योऽसाक्षत्कृतधर्मेभ्य उपदेशेन मंत्रान् सम्प्रादुः।[8]

वेद अपौरुषेय है। इस सिद्धान्त को स्वयं भगवती श्रुति परिपुष्ट करती है-

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋचः सामानिजज्ञिरे।

छन्दांसि जज्ञिरे तस्मात्यजुस्तस्मादजायत ॥[9]

वैदिक वाङ्मय के चार भाग हैं- मन्त्र या संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक तथा उपनिषद। क्रमशः इन चारों विभागों का वर्णन किया जा रहा है।

---

4 तैत्तिरिय भाष्य भूमिका में सायण द्वारा उद्धृत

5 मनुस्मृति 2/6

6 मनुस्मृति 2/7

77 महाभाष्य आह्निक 1

8 निरुक्त 1/6/4

9 ऋग्वेद 10/90/1

संहिता

वेद शब्द विद् धातु से निष्पन्न होता है, अतः वेद का अर्थ है ज्ञान और संहिता शब्द का अर्थ है संकलन। इस प्रकार वेद संहिता ज्ञान का संग्रह है।

पाणिनि के अनुसार संहिता शब्द का पारिभाषिक अर्थ है- **परः संनिकर्षः संहिता**[10]

अर्थात् स्वर का और स्वरमिश्रित व्यञ्जनों का परस्पर स्वाभाविक अर्धमात्रा से अधिक काल के व्यवधान से उच्चारण करना ही संहिता है। परन्तु यास्काचार्य द्वारा संहिता को अत्यन्त भिन्न रूप में परिभाषित किया गया है- **'पद प्रकृति संहिता'**[11] इस सूत्र का अर्थ दो प्रकार से माना गया है- **'पदानां संधीयमानानां प्रकृतिः संहिताः'**[12] इसमें षष्ठी तत्पुरुष समास से यह अर्थ निष्पन्न होता है कि ''परस्पर सन्धिभाव को प्राप्त करते हुए अनेक पदों के एकत्रीकरण हेतु जो मूल कारण है वह संहिता है। तात्पर्य यह है कि 'संहिता' प्रकृति है और पद उसकी विकृति है। तथा बहुब्रीहि समास से द्वितीय अर्थ यह निष्पन्न होता है कि ''**पदान्येव प्रकृर्तियस्याः सा**'' अर्थात् पद प्रकृति है और संहिता विकृति है।

संहिता शब्द का विचार इतिहास पद्धति के अनुसन्धित्सु अनेक प्रकार से करते हैं- **सहन्यन्ते एकत्री क्रियन्ते मन्त्राः सूक्तानि वा अस्यां सा संहिता**[13] इस व्युत्पत्ति के अनुसार 'सूक्त' जिन ऋषियों के नाम पर आज उपलब्ध हैं वे उनके कर्ता एवं दृष्टा थे और उनके वे मन्त्र एवं सूक्त भी पृथक्-पृथक् थे। कालान्तर में उन्हें एकत्र करके जो ग्रन्थ तैयार किया गया वह संहिता पद से वाच्य है।

10 पाणिनि सूत्र 1/4/109
11 निरुक्त 1/6/12
12 निरुक्त 1/6/12
13 निरुक्त 2/3/27, ऋग्वेद संहिता 5/59/9

1.1 पौर्वत्य एवं पाश्चात्य दृष्टिकोण

वैदिक संहिताएं चार हैं- ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद । यद्यपि वेद एक और अखण्ड हैं तथापि मन्त्रों के स्वरूप और विनियोग की दृष्टि से संहिताओं के रूप में उनके चार प्रकार हो जाते हैं । मीमांसा सूत्र के प्रणेता जैमिनि ने इन चार प्रकारों को स्पष्ट करते हुए कहा है- **तेषामृग्यत्रार्थवशेन पादव्यवस्था।**[14] जिन मन्त्रों में अर्थ के आधार पर पाद या चरण व्यवस्था हो वे ऋक् कहलाते हैं। गीतिषु सामाख्या अर्थात् जिन मन्त्रों का गान किया जाये वे साम हैं । शेषे यजुः शब्दः इन दोनों के अतिरिक्त शेष मन्त्रों को यजुष् कहते हैं ।

ऋग्वेद चारों वेदों में सर्वप्राचीन एवं महत्त्वपूर्ण माना जाता है । तैत्तिरीयसंहिता के अनुसार जिस यज्ञ क्रिया को साम और यजुः से सम्पादित किया जाता है वह शिथिल होती है, परन्तु ऋक् द्वारा सम्पादित क्रिया दृढ़ होती है । ब्राह्मण ग्रन्थ भी 'तदेतद् ऋचा अभ्युक्तम्' वाक्य प्रकाशित करते हैं । यह धार्मिक चेतना के विकास की सबसे प्रारम्भिक अवस्था का प्रतिनिधित्व करता है । ऋग्वेद की अध्ययन-परम्परा ऋषि पैल से आरम्भ हुई है । ऋग्वेद में छन्द-बद्ध मन्त्रों का संकलन किया गया है ।
ऋक् का अर्थ छन्दोबद्ध रचना (वर्णानुपूर्वी) को ऋक् संज्ञा प्राप्त है ।

(1) ऋच्यते स्तूयतेऽनया इति ऋक् जिन मन्त्रों के द्वारा देवताओं की स्तुति की जाती है, उन्हें 'ऋक्' कहते हैं ।[15]

(2) पादेनार्थेन चोपेतावृत्तवृद्ध मन्त्रा ऋचः चरण एवं अर्थों से युक्त वृत्तवृद्ध मन्त्र को ऋक् कहते हैं ।[16]

(3)"तेषामृक् यत्रार्थवशेन पादव्यवस्था"- जिस वाक्य में अर्थानुसार पादव्यवस्था हो उसे ऋक् कहते हैं ।[17] **यत्र पादकृता व्यवस्था स मन्त्रो ऋङ्नामा-** यह वाक्य कहकर शबरस्वामी ने उपर्युक्त मन्तव्य को ही स्पष्ट किया है ।

14 जैमिनीय सूत्र 2/31/35

15 जैमिनिय न्याय भाष्य , 2/1/12

16 आप. परि., 3/1

अतः निष्कर्ष यह हुआ कि जिन मन्त्रों में अर्थ विच्छिन्न नहीं होता परन्तु पूर्ण रहता है और अर्थवशेन जहाँ एक पाद में निश्चित अक्षर रहते हैं (न न्यून रहते हैं और न अधिक रहते हैं) इस प्रकार पाद व्यवस्था जहाँ होती है वे ऋक् शब्द वाच्य होते हैं।

वैदिक साहित्य

ऋग्वेदसंहिता ऋत्विक –होता मण्डल-१० सूक्त- 1017 +11= 1028 मन्त्र- 10580.25 अष्टक- 8 अध्याय-64 वर्ग- 2006 मन्त्र- 10580.25 मुख्याचार्य- पैल देवता-इन्द्र	ब्राह्मण		ऐतरेय ब्राह्मण, शांखायन ब्राह्मण
	आरण्यक		ऐतरेय आरण्यक, शांखायन आरण्यक
	उपनिषद्		ऐतरेयोपनिषद्, कौषीतक्युपनिषद्, वाष्कलोपनिषद्
	शिक्षा		पाणिनीय शिक्षा, ऋक्प्रातिशाख्य (पार्षद)
	कल्पसूत्र	श्रौतसूत्र	आश्वलायन, शांखायन (कौषितकी)
		गृह्यसूत्र	आश्वलायन, शांखायन (कौषीतकी),शाम्बव्य
		धर्मसूत्र	वशिष्ठ धर्मसूत्र
		शुल्बसूत्र	
		शाखाएँ	ऋग्वेद की 21 शाखाएँ हैं, किन्तु वर्तमान में निम्न शाखएँ ही उपलब्ध हैं- शाकल, वाष्कल, शांखायन, माण्डूकायन, आश्वलायन

17 जैमिनिय न्याय भाष्य, 2/1/35/10

ऋग्वेद की शाखाएं

महाभाष्य के आधार पर ऋग्वेद की 21शाखाएँ मानी जाती हैं- "एकविंशतिधा बाह्वृच्यम्"। सम्प्रति केवल शाकल शाखा ही प्रचलित है। चरणव्युह के अनुसार ऋग्वेद की पाँच प्रमुख शाखाएं हैं- शाकल, बाष्कल, आश्वलायन, शांखायन, माण्डूकायन।

शाकल - सम्प्रति ऋग्वेद की शाकल शाखा ही प्रचलित एवं उपलब्ध है।

बाष्कल - यह शाखा उपलब्ध नहीं है। शाकल शाखा में 1017 सूक्त है परन्तु बाष्कल शाखा में आठ सूक्त अधिक अर्थात् 1025 सूक्त थे। इन 8 सूक्तों को भी शाकल शाखा में समाविष्ट कर लिया गया है। एक 'संज्ञान सूक्त' को ऋग्वेद के अन्त में ले लिया है और शेष 7 सूक्तों को 'बालखिल्य' सूक्तों में प्रथम 7 सूक्तों में स्थान दिया गया है।

आश्वलायन - यह संहिता और इसका ब्राह्मण सम्प्रति उपलब्ध नहीं है। इस शाखा के श्रौतसूत्र और गृह्यसूत्र ही उपलब्ध हैं।

शांखायन- यह शाखा उपलब्ध नहीं है। इसके ब्राह्मण, आरण्यक, श्रौतसूत्र और गृह्यसूत्र ही प्राप्त है।

माण्डूकायन - यह शाखा सम्प्रति अप्राप्य है।

ऋग्वेद का विभाजन

वेद की संहिताओं का विभाजन क्रम एक-दूसरे से भिन्न है "यजुर्वेद" अध्यायों में विभाजित है "साम" आर्चिक में तथा "अथर्व" काण्डों में विभाजित है। ऋग्वेद संहिता का विभाजन दो भागों में किया गया है: (1) अष्टक- अध्याय-वर्ग और मन्त्र। (2) मण्डल-अनुवाक- सूक्त और मन्त्र।

अष्टक क्रम

अष्टक क्रमानुसार ऋग्वेद संहिता आठ अष्टकों में विभाजित है। इस प्रकार यह विभाजन संख्या और गणना की दृष्टि से सुन्दर है। प्रत्येक अष्टक को आठ अध्यायों विभाजित किया है। अतः सम्पूर्ण ऋग्वेद में 64 अध्याय हैं। प्रत्येक अध्याय वर्गों में विभाजित हैं। ऋग्वेद में बालखिल्य सूक्तों

को भी सम्मिलित करते हुए 8 अष्टक, 64 अध्याय, 2006 वर्ग और 10,552 मन्त्र हैं। इसमें बालखिल्य सूक्तों सहित 1028 सूक्त हैं और 3,97,256 अक्षर हैं।

मण्डलक्रम

मण्डलक्रम ऐतिहासिक एवं विज्ञान की दृष्टि से अधिक महत्त्वपूर्ण है। इसमें सम्पूर्ण ऋग्वेद को ऋषि और देवता के अनुसार 10 मण्डलों में विभक्त किया गया है। यही कारण है कि ऋग्वेद को "दशतयी" भी कहा जाता है। इसमें बालखिल्य के 11 सूक्तों के 80 मन्त्रों को सम्मिलित करते हुए 85 अनुवाक, 1028 सूक्त और 10,552 मन्त्र हैं।

यजुर्वेद संहिता

यजुष् शब्द का अर्थ - यजुर्वेद के यजुष् शब्द की अनेक व्याख्याएं प्रस्तुत की गई हैं, जो विभिन दृष्टिकोण के सूचक हैं। यजुष् शब्द के मुख्य अर्थ हैं-

(1) यजुर्यजतेः - यज्ञ से संबद्ध मन्त्रों को यजुष् कहते हैं।[18]

(२) इज्यतेऽनेनेति यजुः - जिन मन्त्रों से यज्ञ किया जाता है, उन्हें यजुष् कहते हैं। यजुर्वेद का यज्ञ के कर्मकाण्ड से साक्षात् सम्बन्ध है, अतः इसे 'अध्वर्युवेद' भी कहते हैं। यज्ञ में अध्वर्यु नामक ऋत्विज् यजुर्वेद का प्रतिनिधित्व करता है और वही यज्ञ का नेतृत्व करता है। अतएव आचार्य सायण ने कहा है कि वह यज्ञ के स्वरूप का निष्पादक है -

अध्वर्युनामक एक , ऋत्विग् यज्ञस्य स्वरूपं निष्पादयति।

अध्वरं युनक्ति, अध्वरस्य नेता ।।[19]

(३) अनियताक्षरावसानो यजुः - जिन मन्त्रों में पद्यों के तुल्य अक्षर-संख्या निर्धारित नहीं होती है, वे यजुष् हैं।

18 निरुक्त 7/12

19 सायण ऋग्वेदभाष्यभूमिका

(४) शेषे यजुः शब्दः - अर्थात् पद्यबन्ध और गीति से रहित मन्त्रात्मक रचना को यजुष् कहते हैं।[20] इसका अभिप्राय यह है कि सभी गद्यात्मक मन्त्र-रचना यजुः की कोटि में आती है।

यजुर्वेद मुख्य रूप से दो भागों में विभक्त है- (1) शुक्ल यजुर्वेद (2) कृष्ण यजुर्वेद।

शुक्ल यजुर्वेद- शुक्ल यजुर्वेद की दो शाखाएँ हैं तथा एक-एक संहिताएं उपलब्ध हैं-

(१)**माध्यन्दिन या वाजसनेयि-संहिता -** इसमें 40 अध्याय और 1975 मन्त्र हैं। अतएव यजुर्वेद के सन्दर्भ में केवल दो संख्याएं रहती हैं- एक अध्याय की और दूसरी मंत्र की। जैसे-

ईशा वास्यमिदं सर्वं, यत् किञ्च जगत्यां जगत्।

तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा, मागृधः कस्यस्विद्धनम्॥[21]

अर्थात् यह 40वें अध्याय का प्रथम मंत्र है। शतपथ ब्राह्मण में यजुर्वेद के अक्षरों की संख्या 2,88,000 (दो लाख, अट्ठासी हजार दी गयी है, अर्थात् 8 हजार 36 अक्षर वाला बृहती छन्द)।[22]

(२) **काण्व संहिता -** इसमें भी 40 अध्याय हैं और मंत्रसंख्या 2086 है, अर्थात् वाजसनेयि शाखा से इसमें 111 मंत्र अधिक हैं। इसका विभाजन अध्याय, अनुवाक और मन्त्रों के रूप में हुआ है। इसमें **40** अध्याय, अनुवाक **328** और मन्त्र **2086** हैं।

कृष्ण यजुर्वेद - शुक्लयजुर्वेद और कृष्ण यजुर्वेद में मुख्य अन्तर यह है कि शुक्ल यजुर्वेद में केवल मन्त्र-भाग है, जबकि कृष्ण यजुर्वेद में मन्त्रों के साथ उनकी व्याख्या और विनियोग आदि का भी उल्लेख है। 'चरणव्यूह' में यजुर्वेद की 86 शाखाओं का उल्लेख है, जिसमें शुक्ल यजुर्वेद की 17 शाखाएँ हैं, शेष 69 कृष्ण यजुर्वेद की हैं। संप्रति कृष्ण यजुर्वेद की केवल 4 शाखाएँ ही उपलब्ध निम्न प्रकार हैं- (1) तैत्तिरीय शाखा (2) मैत्रायणी (3) काठक (या कठ) (4) कपिष्ठल-कठ शाखा।

यजुर्वेद संहिता	ब्राह्मण	शतपथ(माध्यन्दिन),शतपथ(काण्व),तैत्तिरीय ब्राह्मण,मैत्रायणी

20 पूर्वमीमांसा 2/1/37

21 यजुर्वेद 40/1

22 अष्टौ बृहतीसहस्राणि (800....36= 2,288,000 अक्षराणि) यजुषाम्। शतपथ ब्राह्मण 10.4.24

ऋत्विक्- अध्वर्यु मुख्यदेवता- वायु मुख्याचार्य- वैशम्पायन विषय- यागवाजसनेयिशाखा- 40 अध्याय, 303 अनुवाक, 1975 मन्त्र या कण्डिका, काण्वशाखा—40 अध्याय, 328, अनुवाक, 2086 मन्त्र/कण्डिका।			ब्राह्मण,कठब्राह्मण,कपिष्ठल ब्राह्मण
	आरण्यक		बृहदारण्यक, तैत्तिरीय, मैत्रायणी
	उपनिषद्		ईशावास्योप,बृहदारण्यकोप,कठोप,मैत्रायण्युप,तैत्तिरीयोप,श्वेताश्वतरोप
	शिक्षा		वाजसनेयिप्रा, तैत्तिरीयप्रा, याज्ञवलक्य, वाशिष्ठीशिक्षा, माण्डय, भारद्वाज, माध्यन्दिन, माध्यन्दिन, अवसाननिर्णय
	कल्पसूत्र	श्रौतसूत्र	कात्यायन(पारस्कर), बौधायन, आपस्तम्ब, सत्याषाढ, वैखानस, भारद्वाज, कठ, मैत्री
		गृह्यसूत्र	कात्यायन, बौधायन,आपस्तम्ब,सत्याषाढ, वैखानस, भारद्वाज, कठ, मैत्री
		धर्मसूत्र	हारीत, शंख, विष्णु, वशिष्ठ, बौधायन, आपस्तम्ब, वैखानस, हिरण्यकेशी
		शुल्बसूत्र	कात्यायन, बौधायन, आपस्तम्ब, मैत्रायणी, मानव, वराह, वाधूल
			(क) शुक्ल यजुर्वेद- 1.माध्यन्दिन या वाजसनेयी शाखा 2.काण्व शाखा (ख)कृष्ण यजुर्वेद- 1.तैत्तिरीयशाखा 2.मैत्रायणीशाखा 3.कठशाखा 4.कपिष्ठलशाखा

सामवेद संहिता

सामन् (साम) का अर्थ - सामन् या साम का अर्थ गीतियुक्त मन्त्र है। साम के लिए गीतियुक्त होना अनिवार्य है। ऋग्वेद के मन्त्र जब विशिष्ट गान-पद्धति से गाये जाते हैं, तब उनको सामन् या साम कहते हैं। **'गीतिषु सामाख्या'**[23] ऋग्वेद में स्तोत्ररूप या गीतिरूप मन्त्र को 'आंगुष्यं साम'[24] कहा है। आंगुष्य का अर्थ है- स्तोत्र या गीतिरूप। इससे ज्ञात होता है कि जब मन्त्र या ऋचा गीति के रूप में प्रस्तुत की जाती है तो उसे साम कहते है। ऋग्वेद और सामवेद का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। ऋचा + गान = सामन् है। इसी भाव को अन्यत्र भी प्रकट किया गया है

(क) या ऋचा तत् साम।

(ख) ऋचि अध्यूढ़ं साम।[25]

(ग) अमोऽहमस्मि सा त्वम्, सामाहमस्मि-ऋक् त्वम्, द्यौरहं पृथिवी त्वम्। ताविह सं भावव प्रजामा जनयावहै॥[26]

(घ) सा च अमश्चेति तत् साम्नः सामत्वम्।[27]

सामवेद के दो मुख्य भाग हैं:- (1) पूर्वार्चिक, (2) उत्तरार्चिक। आर्चिक का अर्थ है, ऋचाओं का समूह।

(1) **पूर्वार्चिक** इसमें चार काण्ड एवं ६ अध्याय हैं। इन अध्यायों को खण्डों में विभाजित किया गया हैं और इनको 'दशति' नाम दिया गया है।

(2) **उत्तरार्चिक** इसमें 21 अध्याय या 9 प्रपाठक हैं और मंत्रों की संख्या 1225 है। उत्तरार्चिक में कुल 400 सूक्त हैं। इनमें 287 सूक्तों में प्रत्येक में तीन-तीन मंत्रों का समूह है। 66 में दो-दो मंत्र हैं और शेष 47 सूक्तों में 1 से 12 तक मंत्र-समूह हैं। मंत्र-संख्या-विचार- सामवेद के पूर्वार्चिक

23 पूर्वमीमांसा 2/1/36

24 ऋग्वेद1/62/2

25 छान्दोग्य उपनिषद् 1/3/4

26 अथर्ववेद 14/2/2/71; ऐतरेय ब्राह्मण 8/27; बृहदारण्यक उपनिषद् 6/4/20

27 बृहदारण्यक उपनिषद् 1/3/22

में 650 मंत्र हैं और उत्तरार्चिक में 1225 । इस प्रकार पूरे सामवेद की मंत्र संख्या 1875 है । इसमें ऋग्वेद से संकलित ऋचाएं 1771 हैं। अतः सामवेद में केवल 104 मंत्र ही नये हैं । ऋग्वेद के 1771 मंत्रों में भी 267 मंत्र पुनरुक्त हैं तथा सामवेद के 104 नए मंत्रों में भी 5 पुनरुक्त हैं । अतः पुनरुक्त मंत्रों की संख्या 272 है । सामवेद में ऋग्वेदीय मंत्र 1504 + पुनरुक्त 267 =1771

सामवेद में नवीन मंत्र 99 + पुनरुक्त 5 = 104, कुल मंत्र संख्या 1875

सामवेद में ऋग्वेद से लिए गए अधिकांश मंत्र मण्डल 8 और 9 से हैं। ऋग्वेद के नवम मंडल से संग्रहीत मन्त्र 645 और अष्टम मंडल से 450 मंत्र हैं । इसके अतिरिक्त ऋग्वेद के शेष सभी मंडलों से भी कुछ मन्त्र लिए गए हैं । इनमें प्रथम मंडल से 237 मंत्र और दशम मंडल से 110 मंत्र हैं । शेष मंडलों से गृहीत मंत्रों की संख्या न्यून है ।

अथर्ववेद संहिता

निरुक्त और गोपथ ब्राह्मण में अथर्वन् शब्द की दो प्रकार से व्याख्या की गई है । अथर्वन्- गतिहीन या स्थिरता से युक्त योग । निरुक्त के अनुसार 'थर्व्' धातु का अर्थ है गति या चेष्टा, अतः अथर्वन् का अर्थ है- गतिहीन या स्थिर इसका अभिप्राय है कि जिस वेद में स्थिरता या चित्तवृत्तियों के निरोधरूपी योग का उपदेश है, वह अथर्वन् वेद है- **अथर्वाणोऽथर्वणवन्तः। थर्वतिश्चरतिकर्मा, तत्प्रतिषेधः।**[28] गोपथ ब्राह्मण में अथर्वन् (अथर्वा) शब्द 'अथर्वाक्' का संक्षिप्त रूप माना जाता है- **अथ अर्वाग् एनं......अन्विच्छेति तद् यद् अब्रवीद् अथार्वाड् एनमेतासु अप्सु अन्विच्छेति तदथर्वाऽभवत्॥**[29] अथर्ववेद में ऐसे अनेक सूक्त हैं, जिनमें आत्मविद्या, आत्मा, ज्येष्ठ ब्रह्म, ब्रह्मविद्या, उच्छिष्ट ब्रह्म, महद् ब्रह्म और ब्रह्मविद्या का विस्तृत वर्णन है । इस प्रकार अथर्ववेद योग-साधना, चित्तवृत्तिनिरोध, ब्रह्म की प्राप्ति आदि विषयों से संबद्ध वेद माना जाता है ।

28 निरुक्त, 11/18

29 गोपथब्राह्मण, पू० 1/4

ब्राह्मण

ब्राह्मण' शब्द विभिन्न तीन अर्थों सहित 'ब्रह्मन्' शब्द से 'अण्' प्रत्यय करने पर बनता है- (1) शतपथ ब्राह्मण के अनुसार ब्रह्मन् शब्द का अर्थ 'मन्त्र' है- **ब्रह्म वै मन्त्रः।**[30] अर्थात् वेदमन्त्रों की व्याख्या और विनियोग प्रस्तुत करने वाले ग्रन्थ को 'ब्राह्मण' कहते हैं।

(2) शतपथ ब्राह्मण के अनुसार 'ब्रह्मन्' शब्द का दूसरा अन्य अर्थ 'यज्ञ' है- ब्रह्म यज्ञः।[31] अतः यज्ञों की व्याख्या और विवरण प्रस्तुत करने वाले ग्रन्थ को 'ब्राह्मण' कहते हैं।

(3) ब्रह्मन् शब्द का एक अन्य अर्थ है- पवित्र ज्ञान या रहस्यात्मक विद्या। इस प्रकार जिन ग्रन्थों में वैदिक रहस्यों का उद्घाटन किया गया है, उन्हें 'ब्राह्मण' कहते हैं।

मीमांसा दर्शन के अनुसार मन्त्रभाग या संहिताग्रन्थों के अतिरिक्त वेद-भाग को 'ब्राह्मण' कहते हैं- **शेषे ब्राह्मणशब्दः।**[32] इसका अभिप्राय यह है कि संहिता भाग में पद्य, गद्य य गीति के रूप में मन्त्र हैं, उनके अतिरिक्त व्याख्या-ग्रन्थों को 'ब्राह्मण' कहते हैं। भट्ट भास्कर का कथन है कि कर्मकांड और मन्त्रों के व्याख्यान ग्रन्थों को 'ब्राह्मण' कहते हैं-

ब्राह्मणं नाम कर्मणस्तन्मन्त्राणां व्याख्यानग्रन्थः।[33]

अतः मन्त्रों की रचना के साथ - साथ उनकी व्याख्या की परम्परा भी प्राचीनकाल से प्रचलित है। इस व्याख्या परम्परा का विकास ब्राह्मण ग्रन्थों के रूप में हुआ है। वैदिक संहिताओं के ज्ञान की व्याख्या करने वाले ग्रन्थ ब्राह्मण हैं।

ब्राह्मण ग्रन्थों का प्रतिपाद्य विषय

ब्राह्मणग्रन्थों का मुख्य प्रतिपाद्य विषय है | यज्ञ एवं यज्ञप्रक्रिया का सर्वाङ्गीण विवेचन। यज्ञ-मीमांसा के दो मुख्य भाग हैं - विधि और अर्थवाद।

---

30 शतपथ ब्राह्मण 7/1/15

31 शतपथ ब्राह्मण 3/1/4/15

32 मीमांसा दर्शन 2/1/33

33 भट्टभास्कर, तैत्तिरीय संहिता पर भाष्य 1/5/1

(1) विधि का अभिप्राय है - यज्ञक्रिया का विशद निरुपण। अर्थात् यज्ञ कब, कहां कैसे किया जाय? यज्ञ के लिए कितने ऋत्विज् चाहिए?, प्रत्येक के क्या कर्त्तव्य हैं?, यज्ञ के लिए क्या-क्या सामग्री होनी चाहिए?, यज्ञशाला का निर्माण आदि। अतएव आपस्तम्ब का कथन है- 'कर्मचोदना ब्रह्मणानि' अर्थात् ब्राह्मण ग्रन्थ विविध यज्ञरूप कर्मों में मनुष्यों को प्रेरित करते हैं।

(2) अर्थवाद का अभिप्राय है - स्तुति या निन्दापरक विविध विषय। यज्ञीय कर्मकाण्ड में विहित विधानों की अनेक प्रकार से प्रशंसा की जाती है। साथ ही निषिद्ध कर्मों की निन्दा की जाती है। मीमांसा दर्शन के भाष्य में शबरस्वामी ने ब्राह्मण ग्रन्थों के प्रतिपाद्य विषयों की संख्या दस बताई है। जिनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है-

हेतुर्निर्वचनं निन्दा प्रशंसा संशयो विधिः।

परक्रिया पुराकल्पो व्यवधारण-कल्पना।

उपमानं दशैते तु विधयो ब्राह्मणस्य वै ॥[34]

हेतु- किसी यज्ञ के अनुष्ठान विधि के पीछे निहित कारण को स्पष्ट करना।

निर्वचन - व्युत्पत्ति के द्वारा यज्ञ में प्रयुज्य वस्तु की सार्थकता समझना।

निन्दा- यज्ञ में निषिद्ध कर्मों की निन्दा। जैसे यज्ञ में असत्य भाषण निषिद्ध है। अतः असत्य भाषण निन्दित कर्म है।

प्रशंसा- यज्ञ में विहित कार्यों की प्रशंसा करना। जैसे 'यज्ञो वै श्रैष्ठतमं कर्म' अर्थात् यज्ञ सर्वश्रेष्ठ कर्म है, अतः अवश्य करना चाहिए। इस प्रकार यज्ञ की प्रशंसा करना।

संशय- किसी यज्ञीय कर्म के विषय में कोई संदेह उपस्थित हो तो उसका निवारण करना। यह कार्य इस प्रकार से किया जाए, इसका स्पष्ट निर्देश करना।

विधि- विधि का अभिप्राय है- यज्ञीय क्रियाकलाप की पूरी विधि का विशद निरूपण अर्थात् कौन-सा कार्य पहले किया जाए, तथा उसके बाद के कार्यों का क्रम प्रस्तुत करना।

34 मीमांसा सूत्र, शाबर भाष्य 2/18

परक्रिया- परक्रिया का भाव है - परार्थक क्रिया, परहित या परोपकार वाले कर्त्तव्यों का उपदेश। इसमें इष्टापूर्त का समावेश है । इष्ट से अभिप्राय है- विविध याग आदि। पूर्त से अभिप्राय है - धर्मार्थ कार्य, जैसे- कूप तडाग आदि का निर्माण, धर्मशाला अनाथालय आदि का निर्माण । ब्राह्मण ग्रन्थ ऐसे जनहित के कार्यों का उपदेश देते हैं ।

पुराकल्प- यज्ञ की विभिन्न विधियों के समर्थन में किसी प्राचीन आख्यान या ऐतिहासिक घटना का वर्णन करना। जैसे राजा के अभाव में जनता भयभीत रहती थी, अतः राजा के वरण की व्यवस्था की गई । इनमें हरिश्चन्द्रोपाख्यान में प्रसिद्ध 'चरैवेति, चरैवेति' आदि का निर्देश दिया गया है ।

व्यवधारण कल्पना- अनुष्ठान में संख्यादि बताकर विशेष निर्धारण ।

उपमान- समानता के आधार पर उदाहरण या दृष्टान्त द्वारा वर्ण्य-विषय की पुष्टि करना । जैसे ऐतरेय ब्राह्मण में 'चरैवेति' की पुष्टि में सूर्य का उदाहरण प्रस्तुत किया गया है । सूर्य निरन्तर चलता रहता है, अतएव उसकी तेजस्विता बनी रहती है ।

उपर्युक्त दस प्रकार की पद्धतियों और विधि तथा अर्थवाद के द्वारा ब्राह्मण ग्रन्थ वैदिक संहिताओं की आधिभौतिक, आधिदैविक तथा आध्यात्मिक व्याख्या प्रस्तुत करते हैं । सभी ब्राह्मण ग्रन्थ गद्य में हैं ।

आरण्यक

आरण्यक शब्द का अर्थ है- *अरण्ये भवम् आरण्यकम्* । अर्थात् आरण्यक से तात्पर्य अरण्य में होने वाले अध्ययन-अध्यापन, मनन, चिन्तन, शास्त्रीय चर्चा और अध्यात्म-विवेचन से है । उपर्युक्त सभी विषयों के संकलनात्मक ग्रन्थों को आरण्यक कहते हैं। यही भाव आचार्य सायण ने भी तैत्तिरीय आरण्यक के भाष्य में व्यक्त किया है कि अरण्य में इसका पठन-पाठन होने से इसे आरण्यक कहते हैं-

अरण्याध्ययनादेतद् आरण्यकमितीर्यते ।

अरण्ये तदधीयीतेत्येवं वाक्यं प्रवक्ष्यते॥[35]

35 तैत्तिरीय आरण्यक सायण भाष्य श्लोक 6

आरण्यकों में आत्मविद्या, तत्त्वचिन्तन और रहस्यात्मक विषयों का वर्णन है, अतः आरण्यकों को 'रहस्य' भी कहा गया है। आरण्यक भी ब्राह्मण ग्रन्थों के ही भाग हैं। इनमें तत्कालीन लोगों के यज्ञों,उपासना विधियों और उनकी दिनचर्या का निरूपण है, जो तृतीय आश्रम (वानप्रस्थ) स्वीकार कर चुके हैं। इन ग्रन्थों का पठन-पाठन अरण्य में होने के कारण इनकी अरण्य संज्ञा हुई। ब्रह्मविषयक चिन्तन भी आरण्यकों के द्वारा हुआ है। इस दृष्टि से आरण्यकों और उपनिषदों में अत्यन्त साम्य है कि अरण्य में इसका पठन-पाठन होने से इसे आरण्यक कहते हैं-

अरण्याध्ययनादेतद् आरण्यकमितीर्यते।

अरण्ये तदधीयीतेत्येवं वाक्यं प्रवक्ष्यते॥[36]

आरण्यकों में आत्मविद्या, तत्त्वचिन्तन और रहस्यात्मक विषयों का वर्णन है, अतः आरण्यकों को 'रहस्य' भी कहा गया है। आरण्यक भी ब्राह्मण ग्रन्थों के ही भाग हैं। इनमें तत्कालीन लोगों के यज्ञों,उपासना विधियों और उनकी दिनचर्या का निरूपण है, जो तृतीय आश्रम (वानप्रस्थ) स्वीकार कर चुके हैं। इन ग्रन्थों का पठन-पाठन अरण्य में होने के कारण इनकी अरण्य संज्ञा हुई। ब्रह्मविषयक चिन्तन भी आरण्यकों के द्वारा हुआ है। इस दृष्टि से आरण्यकों और उपनिषदों में अत्यन्त साम्य है।

आरण्यकों का प्रतिपाद्य विषय

आरण्यक ग्रन्थ उपनिषदों के पूर्वरूप हैं। उपनिषदों में आत्मा, परमात्मा, सृष्टि-उत्पत्ति, ज्ञान, कर्म, उपासना और तत्त्वज्ञान का प्रतिपादन है। उसी तत्त्वज्ञान का प्रारम्भिक रूप आरण्यकों में निहित है।

प्राणविद्या - आरण्यकों में प्राणविद्या के महत्व पर विशेष प्रकाश डाला गया है। ऐतरेय आरण्यक में प्राणविद्या का विशेष वर्णन है। ऋग्वेद में प्राणविद्या के सूत्र हैं –

36 तैत्तिरीय आरण्यक सायण भाष्य श्लोक 6

आयुर्न प्राणः[37]**, पुनः प्राणमिह नो धेहि ।**[38] अथर्ववेद में एक पूरा सूक्त प्राणविद्या के महत्त्व का वर्णन करता है – **प्राणाय नमो यस्य सर्वमिदं वशे ।**[39] इसमें प्राण को संसार का स्वामी और नियन्ता कहा गया है । प्राण ही संसार का आधार है । ऐतरेय आरण्यक में इसी प्राणविद्या का विशदीकरण है । प्राण संसार का धारक है । मनुष्य से लेकर चींटी तक सभी प्राणी इस पर निर्भर है ।

उपनिषद्

'उपनिषद्' शब्द उप एवं नि उपसर्गपूर्वक 'षदलृ' धातु से 'क्विप्' प्रत्यय के योग से निष्पन्न होता है । उप उपसर्ग का अर्थ समीप है और निषद् का अर्थ निष्ठापूर्वक बैठना है अर्थात् परम तत्त्व के समीप ले जाने वाले ज्ञान को उपनिषद् कहते हैं। आचार्य शंकर ने उपनिषद् का अर्थ ब्रह्मविद्या माना है । शंकर द्वारा उपनिषद् शब्द के तीन अर्थ बताए गए हैं-

विशरण - नाश होना, जिसमें संसार की मूलभूत अविद्या का नाश होता है ।

गति - पाना या जानना, जिससे ब्रह्म की प्राप्ति होती है या उसका ज्ञान होता है ।

अवसान - शिथिल होना, जिससे मनुष्य के दुःख या बन्धन शिथिल होते हैं ।

इस प्रकार शंकराचार्य ने अविद्या का नाश, ब्रह्मप्राप्ति और उसका ज्ञान तथा दुःख-निरोध, इन तीन अर्थों को लेकर उपनिषद् को ब्रह्मविद्या का द्योतक माना है ।[40] उपनिषदों की संख्या के विषय में पर्याप्त मतभेद है । अतः वास्तविक उपनिषदों की संख्या कितनी है यह निर्धारित करना कठिन है । उपनिषदों की संख्या 108 से 200 तक मानी जाती है । मुक्तिक उपनिषद् में उपनिषदों की संख्या 108 बताई गयी है । शंकराचार्य द्वारा 10 उपनिषदों को प्रामाणिक और प्राचीन माना गया है । प्रमुख उपनिषदों के नाम और संख्या इस प्रकार है-

---

37 ऋग्वेद 1/66/1

38 ऋग्वेद 10/59/6

39 अथर्ववेद 11/4/1

40 कठ उपनिषद्, शंकर भाष्य की प्रस्तावना।

ईश्-केन-कठ-प्रश्न-मुण्ड-माण्डुक्य-तित्तिरः।

ऐतरेयं च छान्दोग्यं बृहदारण्यकं तथा॥[41]

उपनिषदों का विवेच्य विषय

ब्रह्म का स्वरूप उपनिषदों में मुख्य रूप से ब्रह्म के स्वरूप का प्रतिपादन है। बृहदारण्यक उपनिषद् में कहा गया है कि ब्रह्म न स्थूल है, न सूक्ष्म, न लघु है, न गुरु, उसमें न रस है, न गन्ध है, न नेत्र है, न श्रोत्र। वह नित्य है, उसमें आकाश ओत-प्रोत है।

ब्रह्म से मन आदि में गति- ब्रह्म चक्षु, श्रोत्र, वाणी और मन आदि की पहुंच से परे है। उसकी सत्ता से ही चक्षु, श्रोत्र, वाणी और मन आदि कार्य करते है।

यन्मनसा न मनुते, येनाहुर्मनो मतम्।

तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि, नेदं यदिदमुपासते॥[42]

ब्रह्म सर्वव्यापी है ब्रह्म सम्पूर्ण संसार में व्याप्त है। तथा वह सारे जीवों के अन्दर विद्यमान है। अतः वह अन्तर्यामी है एवं वह कर्मों का नियन्ता तथा साक्षी होने के साथ-साथ वह चेतन एवं निराकार है। यथा -

ईशावास्यमिदं सर्वं, यत् किञ्च जगत्यां जगत्॥[43]

एको देवः सर्वभूतेषु गूढः, सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा।

कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः, साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च॥[44]

इस प्रकार उपनिषदों का विवेच्य विषय ब्रह्म के स्वरूप का प्रतिपादन है।

41 मुक्तकोपनिषद् 1/30
42 केनोपनिषद् 1/5
43 ईशावास्योपनिषद् 1
44 श्वेताश्वेतरोपनिषद् 6/11

1.2 भारतीय मनस् तत्त्व की अवधारणा

भारतीय विचारकों ने अतिप्राचीन काल से मन की प्रकृति के विषय में विचार किया है। भारतीय साधना पद्धतियों को मन को नियन्त्रित करने का साधन कहा जा सकता है। ऐतिहासिक दृष्टि से प्राचीन वैदिक ऋषियों ने सर्वप्रथम मन कि प्रकृति पर विचार किया। उन्होंने अनुभव किया कि जब भी सोम रस पान करते है तो ह्रदय में परिवर्तन दिखाई देता है। और अनेक वैदिक रचनाओं में ह्रदय को मन का स्थान माना गया है। इन दोनों में परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध दिखलाया गया है परन्तु इसके अतिरिक्त मन की प्रकृति पर कुछ अलग से विचार किया गया है, वह विवेक का एक साधन है, वह सत्यवादी परिपक्व, स्थिर और तीव्र हो सकता है, मूल रूप से वह बौद्धिक है और केवल अप्रत्यक्ष रूप से ही संवेगों से सम्बन्धित है। उसकी सहायता से संवेगों पर नियंत्रण किया जाता है। नासदीय सूक्त में मानव जीवन में मन के महत्व का वर्णन किया गया है। मन को शारीरिक विकास के लिए आवश्यक माना गया है।

प्राचीन काल में जब पश्चिम के देश में ज्ञान-विज्ञान का विकास भी नहीं हुआ था और मानव ने संस्कृति के क्षेत्र में प्रवेश भी नहीं किया था। लगभग उस समय भारत वर्ष के दार्शनिक और योगी मानव मनोविज्ञान के विभिन्न पहलुओं और समस्याओं पर गम्भीरता पूर्वक विचार कर रहे थे। भारतीय मनोविज्ञान का उद्गम पाश्चात्य मनोविज्ञान से कहीं अधिक प्राचीन है परन्तु खेद का विषय है कि भारत वर्ष में ही मनोविज्ञान के क्षेत्र में अध्ययन और अध्यापन करने वाले अनेक प्राध्यापक भारतीय मनोविज्ञान का स्वतंत्र अस्तित्व मानने को तैयार नहीं होते हैं।

जबकि अमेरिका के प्रोफ़ेसर बुडवर्थ को मनोविज्ञान के सम्प्रदाय पर लिखी गई पुस्तक के नवीनतम संस्करण में मनोविज्ञान नाम से दिया हुआ पृथक अध्याय भारत के सभी विश्वविद्यालयों में पूर्ण मान्यता के साथ पढ़ाया जाता है। जबकि अनेक भारतीय विद्वान् भारतीय मनोविज्ञान की बात को मिथ्या साबित करने में लगे रहते हैं तब मनोविज्ञान का वर्णन करने वाली पाश्चात्य पुस्तकों में डच मनोविज्ञान, फ्रेंच मनोविज्ञान आदि शब्द सुनाई पड़ते हैं। ज्ञान- विज्ञान के किसी भी क्षेत्र में भारतीय

तथा अन्य विद्वानों ने ब्रिटिश, अमेरिकी, रूसी आदि विशेषण लगाने पर कभी भी आपत्ति नहीं की। इस प्रकार मनोविज्ञान के क्षेत्र में ब्रिटिश मनोविज्ञान ,जर्मन मनोविज्ञान और अमेरिकी मनोविज्ञान आदि का सदैव अध्ययन होता रहा। किन्तु जब भारतीय मनोविज्ञान की बात की जाती है तो भारत के अनेक मनोवैज्ञानिकों को ऐसा जान पड़ता है कि मानव मनोविज्ञान के क्षेत्र में कोई अत्यन्त विशेष संप्रदाय वाली बातचीत की जा रही है, इसके मूल में दो कारण हैं पहला- ऐसा प्रतीत होता है कि भारतीय मनोविज्ञान कह कर हम अन्य मनोविज्ञान से अलग कोई सम्प्रदाय स्थापित करना चाहते हैं।[45] जबकि आधुनिक इस चेतना के विरुद्ध है। दूसरा- पाश्चात्य, ज्ञान-विज्ञान की छत्रछाया में पले हुए और उनके प्रकाश में प्रकाशित विद्वान् यह विश्वास नहीं करते कि मनोविज्ञान के क्षेत्र में भी भारत का ऐसा कोई विशेष योगदान रहा है जिसके कारण भारतीय मनोविज्ञान अलग से कोई अध्ययन का विषय हो सकता है। उपरोक्त दोनों ही विचार भारतीय मनोविज्ञान के विषय में पूर्वाग्रह और अल्प ज्ञान पर आधारित है।

मनस् का अर्थ

मन ज्ञान धातु औणादिक असुन् प्रत्यय जब होता है तब 'मन' सकारान्त प्रातिपदिक सिद्ध होता है। सभी धातुओं में असुन् (उणा. ४/१५८) इस सूत्र से असुन् प्रत्यय होता है यह प्रत्यय यहाँ पर करण अर्थ में होता है अत: इसलिए मन का अर्थ होता है –

मन्यते बुद्ध्यते अनेन इति मन: (शब्दकौस्तुभ)

जिससे हमारे लिए कुछ विषयक ज्ञान संभव होता है तो वह मन होता है। इसलिए मन को ज्ञान का साधन कहा गया है ऐसा हमारा प्रश्न संभव है जो ज्ञान के साधन होते है। जैसे -ज्ञानेन्द्रियाँ – चक्षु, श्रोत, त्वक, घ्राण, रसना आदि। किन्तु मन ज्ञान का साधन कैसे है ? यद्यपि इन्द्रियाँ स्वविषयक

45 सिंह. अरुण कुमार, आधुनिक सामान्य मनोविज्ञान ,मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स चतुर्थ संस्करण .दिल्ली : 2006

सन्निकर्ष को ग्रहण करती है तब यह ज्ञान मन ही होता है। यदि मन और इन्द्रियाँ संयुक्त होती है तब चक्षु आदि इन्द्रियों का रूप स्वविषयक ज्ञान के रुप में होता है।[46]

भारतीय मनोविज्ञान में मनस् शब्द का प्रयोग अवधान यंत्र के रुप में किया गया है। मनस् ही अवधान का साधन है। भाषा की दृष्टि से मनस् का अर्थ मन, हृदय, समझ, प्रत्यक्ष ज्ञान, प्रज्ञा आदि के अर्थ में लिया गया है। न्याय दर्शन में इसे द्रव्य या पदार्थ माना गया है जो आत्मा से सर्वथा भिन्न है। अनेक साहित्यिक रचनाओं में मन शब्द को सोच. विचार. कल्पना. प्रत्यक्ष. योजना. प्रयोजन. अभिप्राय. संकल्प. कामना. इच्छा. रूचि. विचार-विमर्श आदि के अर्थ में प्रयोग किया गया है। इसके अतिरिक्त इसमें स्वभाव प्रकृति, तेज सत्व, ओज और मानस नामक सरोवर का अर्थ लिया गया है।

भारतीय मनोविज्ञान की विचारधारा को कभी भी स्वतन्त्र शाखा के रूप में नहीं देखा गया। तथापि भारतीय मनोविज्ञान दर्शनशास्त्र की एक शाखा के रूप में विकसित हुआ है। ध्यातव्य है कि प्राचीन भारतीय ऋषि-मुनि आध्यात्मिक साधना में होने वाले विभिन्न अनुभव पर चिंतन करते समय मनोवैज्ञानिक समस्याओं का समाधान करते थे, समाधि की अवस्था जो कि भारतीय दर्शन में आध्यात्मिक साधना में सर्वोच्च अवस्था मानी जाती रही है। यह मनोवैज्ञानिक चिंतन का विशेष विषय रही है। भारतीय मनोविज्ञान में मानव व्यवहार पर नहीं बल्कि मानव मन पर विशेष रूप से विचार किया गया है। भारतीय आध्यात्मिक साधना में मन की चंचलता को सबसे अधिक बाधक पाया गया, अतिप्राचीन काल से ही यह अनुभव होता रहा है कि-

“मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयो:”। [47]

अस्तु मन की प्रकृति और उसके नियंत्रण के उपायों पर विस्तारपूर्वक चिंतन किया गया। इस प्रकार भारतीय मनोविज्ञान को मन का विज्ञान कहा जा सकता है। भारतीय दार्शनिकों का लक्ष्य आत्मा की खोज और आत्मसाक्षात्कार रहा है। जबकि पश्चिम में मनुष्य के मानसिक स्तर को सर्वोच्च स्तर माना गया है। भारत में मानसिक स्तर से भी ऊपर आध्यात्मिक अथवा आत्मा का स्तर

46 SHRUTI SHOBHA ,Veda Vijnana Shodha Samsthanam Vol 4 . PP 1-8 . April . Bengaluru : 2017
47 मैत्रायणी उपनिषद् 6/34

माना गया है। इस प्रकार भारतीय दार्शनिकों ने आत्मा को मन से परे माना है। श्री मद्भगवद्गीता में कहा गया है कि-

“इन्द्रियाणि मनो बुद्धिरस्याधिष्ठानमुच्यते”।[48]

अर्थात् इन्द्रियाँ मन और बुद्धि यह सब काम के अधिष्ठान अर्थात् निवास करने के स्थान हैं तथा इन्द्रियों की अपेक्षा संकल्प-विकल्पात्मक मन को श्रेष्ठ कहते हैं और मन की अपेक्षा निश्चयात्मिका बुद्धि को श्रेष्ठ कहा गया है।

“मनसस्तु परा बुध्दिर्यो बुद्धेः परतस्तु स”।[49]

अर्थात् मन से परे बुद्धि और बुद्धि से परे आत्मा होती है। यह आत्मा बुद्धि के माध्यम से मन पर शासन करती हैं आत्मा का वर्णन करने के लिए भारतीय विचारकों ने अनेक वैज्ञानिक उपायों का सहारा लिया है क्योंकि आत्मा को शब्दों में नहीं बांधा जा सकता। भारतीय मनोविज्ञान आत्मसाक्षात्कार का विज्ञान है उसमें आत्मसाक्षात्कार के लक्ष्य को लेकर ही अधिकतर अनुसंधान और चिंतन होते रहे हैं।

मानसशास्त्र हमें मन की चंचल प्रवृत्तियों को निरूध्द करने तथा उसकी संकल्प शक्ति को नियन्त्रण में रखने और मन के अनियंत्रित शासन से अपने को मुक्त करने की शिक्षा प्रदान करता है। यदि देखा जाये तो मनोविज्ञान के ज्ञान के बिना समस्त विज्ञान का ज्ञान निरर्थक प्रतीत होता है। स्वामी विवेकानन्द के द्वारा महर्षि पतंजली के **“योगश्चित्तवृत्ति निरोधः”** [50]

इस सूत्र के अभिप्राय को व्यक्त किया है वस्तुतः चित्तवृत्ति अर्थात् मन का चंचल होना ही समस्त अनर्थों का मूल है अपने जीवन में मन का अनियंत्रित शासन स्वयं के पतन का कारण हैं। भारत के प्राचीनतम ग्रंथों में अनेक मनोवैज्ञानिक तथ्य निहित है।

---

48 श्री मद्भगवद्गीता 3/40

49श्री मद्भगवद्गीता 3/42

50 योग सूत्र 1/2

"मनो हि हेतु: सर्वेषामेन्द्रियाणां प्रवर्तने ।" [51]

भारत में इन्द्रियों की प्रवृत्ति का प्रेरक मन अथवा चेतना को माना गया है। भारतीयों की दृष्टि में मन, मस्तिष्क की वह प्रक्रिया है जो इन्द्रियों द्वारा प्राप्त उपलब्धियों, अनुभूतियों अथवा प्रमाओं से होती है। इसीलिए मन को एक भौतिक चेतनात्मक आधार रूपी पदार्थ माना गया है, इसप्रकार भारतीय विद्वान् मनोविज्ञान का अर्थ मन अथवा चेतना के विज्ञान से लेते है, तथा मानव व्यवहार का आधार चेतना, संवेदना और संकल्प नामक तीन मानसिक तत्वों को मानते है। इसके अनुसार इन मानसिक तत्वों का कार्य मनुष्य कि अन्तरात्मा में ज्ञान,भावना, संकल्प एवं आकांक्षा को जागृत करके उन्हें अपना विशिष्ट रूप देना।

भारतीय मनोविज्ञान के अनुसार अवधान मन का विशेष लक्षण है। कणाद और सांख्य दोनों के अनुयायियों ने अवधान को मन का विशेष लक्षण माना है। यह अनुभव सिद्ध है। अस्तु इसका खंडन नहीं किया जा सकता। कणाद के अनुयायियों ने मनस् को आत्मा अथवा चेतना से सम्बन्धित माना है।

मनस् आत्मा के सुख दुःख अनुभव करने की आंतरिक इन्द्रिय है प्रत्येक आत्मा के लिए एक होने के कारण वह अनंत परमाणु रूप और नित्य है कणाद के अनुयायियों के अनुसार मन में वेग का गुण होता है।

सांख्यकारिका के अनुसार अवधान यंत्र अथवा मनस् में ज्ञानेन्द्रियाँ और कर्मेन्द्रियाँ दोनों को ही सम्मिलित किया गया है। सांख्यकारिका के अनुसार –

उभयात्मकमत्र मन: सङ्कल्पमिन्द्रियञ्च साधर्म्यात् ।
गुणपरिणामविशेषान्नानात्वं बाह्यभेदाश्च ॥[52]

इस प्रकार सांख्य के द्वारा बताई गयी ११ इन्द्रियों में मनस् में दोनों प्रकार की इन्द्रियाँ आ जाती है और उसी के अनुशासन में वे कार्य करती हैं। सांख्य दर्शन के अनुसार मन की इस क्रिया के दो

51 योग वाशिष्ठ 55
52 संख्याकरिका 27

प्रयोजन है भोग और अपवर्ग। ये ही दो प्रयोजन पुरुष और प्रकृति के संयोग कहे गये हैं । इन प्रयोजनों के पूर्ण हो जाने पर मनस् की क्रिया समाप्त हो जाती है।

मन का नियंत्रण या अनुशासन

भारतीय मनोविज्ञान में मन की प्रकृति का अधिकतर विश्लेषण व उसको नियंत्रित अथवा अनुशासित करने के उपायों की विवेचना के प्रसंग में दिया गया है। मन संज्ञान का एक स्तर है। वह इन्द्रियों के सापेक्ष है। वह सर्वार्थग्राही है क्योंकि वह शब्द रूप आदि सब विषयों को जानता है वह त्रैकालिक है क्योंकि उसे भूत भविष्य और वर्तमान तीनों का ज्ञान है।

इन्द्रिय और मन दोनों चैतन्य के विकास हैं किन्तु जबकि इन्द्रियाँ केवल वर्तमान को जानती हैं मन त्रैकालिक है। दूसरी इन्द्रियाँ आलोचनात्मक नहीं है मन में आलोचना की क्षमता है। इन्द्रियाँ तात्कालिक ज्ञान का साधन हैं मन से त्रैकालिक ज्ञान होता है। मन का ज्ञानात्मक कार्य स्नायु मण्डल, मस्तिष्क और चिन्तन योग्य पुद्गलों की सहायता से होता है योगशास्त्र के अनुसार मन का कोई निश्चित स्थान नहीं है जहाँ स्वास्थ्य है वहाँ मन है। वह सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त है योग शास्त्र के पांचवे अध्याय के द्वितीय श्लोक में इस प्रकार वर्णन प्राप्त होता है –

मनो यत्र मरुत् तत्र, मरुद् यत्र मनस्तत:।

अतस्तुल्यक्रियावेतो, संवितौक्षीरनीरवतत् ।।[53]

अर्थात् जहाँ मन है वहां श्वास है और जहाँ श्वास है वहाँ मन है। ये दोनों दूध और पानी की भांति परस्पर मिले हुए हैं। भारतीय मनोविज्ञान के अनुसार मन और मस्तिष्क एक ही नहीं माना जा सकता हैं। मस्तिष्क की क्रिया मन का एक भाग है। यद्यपि मस्तिष्क के बिना मानसिक क्रिया नहीं होती। मन की चंचलता के कारण ही इंद्रियाँ चंचल होती हैं, यह जीवन धारण की मौलिक वृत्तियों का परिणाम है।

---

53 योगदर्शन 5/2

मन की अवस्थाएँ

भारतीय मनोविज्ञान में मन की निम्नलिखित ६ अवस्थाएँ बताई गई हैं –

मूढ़- जो मन में दृष्टि और मिथ्या आचार से व्याप्त होता है उसे मूढ़ कहा जाता है यह योग साधना के योग्य नहीं होता है।

विक्षिप्त- जो मन इधर-उधर विचरण करता है और किसी एक विषय पर स्थिर नहीं होता उसे विक्षिप्त कहा जाता है। यह मन की चंचलता की अवस्था है।

यातायात- जो कभी अंतर्मुखी और बहिर्मुखी होता है उसे यातायात कहा जाता है। यह अवस्था योग की प्रारम्भिक अवस्था है यह अवस्था योग की प्रारम्भिक अभ्यास की अवस्था में दिखलाई पड़ती है। पिछली अवस्था के समान इस अवस्था में भी मन विकल्प पूर्वक बाह्य वस्तुओं को ग्रहण करता है। उसमें स्थिरता बहुत कम होती है और बहुत कम समय तक रहती हैं।

श्लिष्ट- अपने ध्येय में स्थिर बने हुए मन को श्लिष्ट कहा जाता है। अन्तर्निरीक्षण के अभ्यास का परिणाम है। इसमें ध्येय का ध्याता के साथ श्लेष हो जाता है, किन्तु कभी उनमें एकात्मकता नहीं होती है।

सुलीन- अपने ध्येय में सुस्थिर मन सुलीन कहलाता है इस श्लिष्ट दशा के समान मन की यह अवस्था भी परिपक्व अभ्यास वाले योगियों में होती है। इन दोनों दशाओं में मन बाह्य वस्तुओं को ग्रहण नहीं करता और इसलिए उसे सहज आनंद का अनुभव होता है। इसमें ध्येय सूक्ष्म और आत्मगत होता है। यह तन्मयता की अवस्था है जैसे दूध में पानी अपना अस्तित्व खो देता है उसी प्रकार ही मन की सुलीन अवस्था में ध्याता ध्येय से अलग नहीं रह पाता। इसमें मन की स्थिरता शिखर तक पहुँच जाती है किन्तु उसकी गति समाप्त नहीं होती है,उनमें ध्येय की स्थिति बनी रहती है। मन एक ही विकल्प पर स्थिर हो जाता है फिर भी उसकी गति पूर्णतया समाप्त नहीं होती।

निरुद्ध- जब मन बाह्य आलम्बन से शून्य होकर केवल आत्म परिणत हो जाता है तब वह निरुद्ध कहा जाता है यह मनोभूमिका वीतराग व्यक्ति को प्राप्त होती है। यह सहज आनन्द की अवस्था है, इस

अवस्था में आनंद पर शारीरिक परिवर्तन का प्रभाव नहीं होता और इसलिए वह चिरस्थायी होता है। इसमें ध्येय की स्मृति समाप्त हो जाती है और मन का कोई अस्तित्व नहीं रहता। यह सहज चैतन्य के उदय की भूमिका है। इसमें प्रत्यक्षानुभूति प्रबल होती है और इन्द्रिय और मन की कोई आवश्यकता नहीं रहती। यह आत्मा ज्ञान और वैराग्य का परिणाम है।

मन को स्थिर करने का साधन

भारतीय मनोवैज्ञानिक ने मन की उपरोक्त दशाओं का विश्लेषण करने के पश्चात् अन्तिम दशा को सर्वश्रेष्ठ ठहराया और इसके साधनों का विस्तार पूर्वक विचार किया है। मन के निरोध के लिए आत्मज्ञान और वैराग्य के अतिरिक्त श्रद्धा का कार्य शिथिलीकरण, ध्यान और उपदेश के साधन बतलाए गए हैं। मन को स्थिर करने का साधन ज्ञान योग कहलाता है। इसे विशेष रूप से ज्ञान प्रधान व्यक्ति ही कर सकता है। संक्षेप में उसके साधन निम्नलिखित है –

आत्म ज्ञान

भारतीय दर्शन में सभी स्थानों पर आत्म ज्ञान को वृत्तियों के निरोध का साधन माना गया है। आत्मज्ञान से तात्पर्य अपने वास्तविक स्वरूप को जानना है। इससे व्यक्ति स्वयं को मनस् न मानकर आत्मा मानता है। ऐसा करने से वह मन के सुख दु:ख से प्रभावित नहीं होता और तटस्थ द्रष्टा के रूप में उसका नियन्त्रण कर सकता है।

वैराग्य

भारतीय दर्शन में समस्त स्थान पर वैराग्य को मन के निरोध का प्रमुख साधन माना गया है। यह ज्ञान योग का ही एक प्रकार है। आत्मज्ञान होने से अनुराग हट जाता है और विराग उत्पन्न होता है विराग उत्पन्न होने पर वस्तुओं के लिये संकल्प, विकल्प इच्छा आदि नहीं रहते। आत्म ज्ञान न हुये को वैराग्य नहीं होता। जो आत्मज्ञानी होगा वह विरक्त अवश्य होगा। दूसरी तरफ वैराग्य ही आत्मज्ञान और वैराग्य की स्वभाविक क्रियायें है।

श्रद्धा प्रकर्ष

श्रद्धा प्रकर्ष प्रेरणा से प्राप्त होता है। इसके लिए शरीर का संयम भी आवश्यक है। शरीर की स्थिरता से मन में स्थिरता आती है।

आसन

शरीर पर नियंत्रण करने के लिए यम, नियम, आसन और प्राणायाम ये साधन समस्त स्थानों पर दिखलाई पड़ते हैं। भारतीय योग दर्शन में भिन्न भिन्न प्रकार से शरीर पर नियंत्रण के लिए अनेक प्रकार के आसनों का वर्णन मिलता है जैसे– पद्मासन, वीरासन, सुखासन ,सिद्धासन, भद्रासन, वज्रासन, मत्स्येन्द्रासन, अधर्ममत्स्येन्द्रासन, पश्चिमोत्तानासन, वीरासन, पवनमक्तासन, भुजंगासन, धनुरासन, सर्वांगासन, शीर्षासन इत्यादि। ये आसन स्वस्थ्य के लिए विभिन्न मूलतत्वों के अनुसार इनका अपना अलग अलग महत्व है।

प्राणायाम

आसनों के अतिरिक्त मन की स्थिरता के लिये प्राणायाम भी अत्यन्त आवश्यक है। इससे श्वास संयम होता है। श्वास संयम से मन की एकाग्रता सहज हो जाती है। प्राणायाम के विषय में गुरू जी की सहायता आवश्यक मानी गयी है अन्यथा इसकी क्रिया को गलत प्रकार से करने से लाभ से अधिक हानि होने की सम्भावना होती है। भारतीय मनोविज्ञान में 10 प्रकार की वायु मानी गयी है यथा प्राण, अपान, समान ,उदान,व्यान नाग ,कूर्म, कृकल देवदत्त और धनञ्जय। पूर्ण स्वास्थ्य के लिये इन सभी प्रकार की वायु पर नियंत्रण करना आवश्यक। प्राणायाम में 4 स्थितियाँ होती हैं-पूरक अर्थात् वायु को अन्दर खींचना, कुम्भक अर्थात् वायु को अन्दर रोकना और रेचक अर्थात् वायु को बाहर निकालना और चौथे अवस्था में कुछ समय तक फेफड़ों को वायु रहित रखना। इन चारों प्रकार की अवस्थाओं को नियमित बनाने के लिये प्राणायाम के निम्नलिखित **3** प्रकार बतलाये गये हैं**-**

भस्त्रिका- इसमें शिघ्राति शीघ्र नाक से सांस लेना और छोड़ना। इस क्रिया को लौहार की धौंकनी के समान **5** मिनट तक किया जाता है। इससे फेफड़े के अन्दर के अनेक रोग दूर हो जाते हैं। वृद्धावस्था में

इस प्राणायाम को बहुत धीरे-धीरे किया जाना चाहिये । इससे कुण्डलिनी शक्ति के जागृत होने में सहायता मिलती है।

शीत प्राणायाम- इसमें जिह्वा को दांतों के बीच में धीरे से दबाकर मुख से श्वास खींचते हुये सीत्कार किया जाता है। अब वायु को अन्दर रोककर उदर को कई बार चलाया जाता है। इसके बाद नासिका से वायु को छोड़ दिया जाता है। इसमें सिर नीचे झुका रहता है तथा मुख बन्द रहता है।

सूर्यभेदन- नासिका के दाहिने छिद्र को दांये हाथ के अंगूठे से बन्द करके पहली अंगुली को मस्तक के केन्द्र में और दूसरी तथा तीसरी को बांये छिद्र पर रखकर इस प्राणायाम की मुद्रा बनायी जाती है। कनिष्ठिका अंगुली को स्वतंत्र छोड़ दिया जाता है। अब बांये छिद्र से धीरे-धीरे वायु खींची जाती है। जितना समय पूरक में लगता है उससे चारगुना समय कुम्भक में लगाकर वायु को अन्दर रोका जाता है और पेट को बाहर किया जाता है। अब बांये छिद्र को बन्द करके दांयें छिद्र से हवा को निकालना होता है। इस रेचक में पूरक से दुगुना समय लगना चाहिये और मुंह को बन्द रखना चाहिये। अब पूरक के समय फेफड़ों को वायु से खाली रखना चाहिये यह प्राणायाम व्यक्ति को 100 साल तक जीवित रहने में सहायता देता है । प्राणायाम की पूरक क्रिया के साथ मूलबन्ध, कुम्भक क्रिया के साथ जालन्धरबन्ध और रेचक क्रिया के साथ उड्डीयानबन्ध लगाया जाता है।ये बन्ध ठीक से लगाने के लिये गुरु की सहायता आवश्यक है।

काय का शिथिलीकरण

शरीर की चंचलता मन की चंचलता बढ़ाती है। इसलिये मनोनिरोध हेतु काय को शिथिल रखना आवश्यक है। प्राणायाम से भी यह प्रयोजन सिद्ध होता है क्योंकि शरीर की क्रियाओं की सूक्ष्मता श्वास की सूक्ष्मता से प्राप्त हो जाती है। अल्पाहार भी काय के शिथिलीकरण का कारण है।

ध्यान

भारतीय मनोविज्ञान में ध्यान को चित्त की वृत्तियों के निरोध का सबसे अधिक महत्वपूर्ण साधन माना गया है। मन की अवस्थायें दो प्रकार की होती हैं -

1 गत्यात्मक

2 स्थिर

गत्यात्मक अवस्था में मन चंचल होता है । स्थिर अवस्था ध्यान की अवस्था है । मनोवृत्तियाँ दो प्रकार की होती हैं- सत् और असत् । असत् में मन चंचल रहता है । सत् में मन शांत रहता है । मन को एक साथ खाली नहीं किया जा सकता है । उसे असत् कल्पनाओं से मुक्त करने के लिये सत् वृत्तियों का सहारा लिया जाता है । ये वृत्तियाँ मन के चंचल हो जाने पर उभर आती हैं और वह अधीर तथा विक्षिप्त हो जाता है । उसे स्थिर करने के लिये ध्यान की आवश्यकता है । ध्यान का ज्ञान से संबंध बतलाते हुये कहा गया है "व्यग्र ज्ञान एकाग्र ध्यान।" अर्थात् जो चंचल है । वह ज्ञान है और स्थिर ज्ञान ध्यान है । ध्यान जप से भी भिन्न है । जब कि जप में शब्द का उच्चारण होता है ध्यान में शब्द का उच्चारण नहीं होता । वह मानसिक जप भी नहीं है क्योंकि मानसिक जप में उच्चारण न होते हुये भी पुनरावर्तन होता है । ध्यान में न उच्चारण होता है और न पुनरावर्तन होता है ।[54]

ध्यान के आरम्भ में मन को एक आलम्बन पर टिकाया जाना चाहिये । ध्यान से मन का समाधान होता है । इसकी उच्चतम अवस्था को ही जैन दर्शन में समाधि कहा गया है । पतंजलियोगदर्शन में समाधि ध्यान के बाद की अवस्था है । ध्यान के लिये शरीर को स्थिर और शिथिल करने की आवश्यकता है । शरीर और श्वास के शिथिल हो जाने से मन शिथिल होने लगता है । अब मन को आलम्बन पर लगाया जाना चाहिये । आंखों को अधखुली या बंद रखा जाये और यदि वे खुली हों तो नासाग्र पर केन्द्रित किया जाये । ध्यान में आसन सहज होना चाहिये जैसे पद्मासन इत्यादि। साधारणतया जो भी आसन मन को स्थिर रखने में सहायक हो वही आसन किया जाना चाहिये । अब ध्यान के आलम्बन से ध्याता को एकरूप करने का प्रयास किया जाना चाहिये । यह एकीकरण पूर्णतया हो जाना ही समाधि कहलाता है ।

54 चौबे .सरयूप्रसाद ,मनोविज्ञान का ऐतिहासिक रुपरेखा.विनोद पुस्तक मंदिर आगरा : 1998

ध्यान में लगे व्यक्ति पर भी किसी बाह्य परिवेश का प्रभाव नहीं पड़ता। ध्यान में सफलता प्राप्त करने के लिये आहार भी अल्प और शुद्ध होना चाहिये। इस विषय में भारतीय ग्रन्थों में विस्तारपूर्वक चर्चा की गयी है। ध्यान का स्थान भी सब प्रकार के अनवधान से मुक्त होना चाहिये। ध्यान के लिये शरीर और मन का सब प्रकार के तनावों से उन्मुक्त होना आवश्यक है।

गुरु के उपदेश

अन्त में मन को स्थिर करने के लिये गुरु का उपदेश अत्यन्त सहायक होता है। भारतीय साधना पद्धति में गुरु को अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। अनेक बार साधना की प्रक्रिया में व्यक्ति किसी कठिनाई को स्वयं नहीं कर पाता और उलझ जाता है। ऐसी स्थिति में गुरु की सहायता आवश्यक होती है। अनेक बार तो जो साधना व्यक्ति अपनी शक्ति से बड़े लम्बे काल में भी नहीं कर पाता वह भी गुरु की सहायता से अल्प काल में ही पूर्ण हो जाती है। गुरु केवल वचन और कर्म से ही सहायता नहीं करता बल्कि वह नैतिक और आध्यात्मिक सहायता भी करता है। अनेक बार तो वह अपनी अलौकिक शक्तियों से शिष्य को कुछ ही समय में साधना के मार्ग में बहुत आगे ले जाता है। यही कारण है कि भारतीय परम्परा में ईश्वर के बाद गुरु को सर्वोच्च स्थान दिया गया है। कभी-कभी तो गुरु को ईश्वर से भी ऊंचा स्थान दिया गया है।

नैतिक आध्यात्मिक विकास

मन को स्थिर बनाने के उपरोक्त उपायों के अतिरिक्त भारतीय मनोविज्ञान में अनेक अन्य उपायों का भी विवरण मिलता है,जो अधिकतर नैतिक आध्यात्मिक विकास से सम्बन्धित हैं। इस संबंध में निम्नलिखित उपाय विचारणीय हैं -

मौन

वाणी मन की चंचलता का एक बड़ा कारण है। अस्तु, भारतीय मनोविज्ञान में मन को नियंत्रित करने के लिये वाणी पर अधिकार करना आवश्यक माना गया है। जैन दर्शन में तो मौन को साधना के लिये अत्यधिक आवश्यक कहा गया है।

स्वाध्याय

'स्वाध्याय' का शाब्दिक अर्थ है 'पढ़ना' किन्तु मनोनिरोध के प्रसंग में स्वाध्याय का अर्थ है आत्मा को जानना, विचार करना और मनन करना। लगभग सभी भारतीय साधना पद्धतियों में स्वाध्याय को मन के नियंत्रण का प्रमुख साधन माना गया है|

प्रतिपक्ष भावना

भारतीय मनोविज्ञान में किसी भी भावना पर नियंत्रण करने के लिये उसके विपरीत भावना उत्पन्न करने की विधि बतलायी गयी है। यह प्रक्रिया प्रतिपक्ष भावना कहलाती है। इसमें कांटे से कांटा निकालने की नीति अपनायी गयी है।

अनित्य भावना

भारतीय साधना पद्धति में समस्त संसार की वस्तुओं और उनके भोगों को अनित्य मानकर उनकी अनित्यता पर विचार करके उनके प्रति वैराग्य की भावना उत्पन्न करने का उल्लेख किया गया है।

भव भावना

भारतीय दर्शन को संसार का भवचक्र माना गया है। यह संसार परिवर्तनशील है। इसमें कोई भी व्यक्ति सदैव एक सा नहीं रहता। प्रत्येक जीव जन्म जन्मान्तर में विभिन्न योनियों में विचरण करता रहता है। अस्तु, संसार में किसी भी वस्तु का गर्व करना अनुचित है। यह भव-भावना है।

अशौच भावना

भारतीय मनोवैज्ञानिकों ने मन को विषय भोगों से दूर करने के लिये निरन्तर यह ध्यान देने पर जोर दिया है कि शरीर कितने प्रकार के अशुद्ध और दुर्गन्ध युक्त पदार्थों से भरा हुआ है। इस प्रकार के निरन्तर ध्यान से शरीर के प्रति आकर्षण नहीं रहता।

अन्यत्व भावना

लगभग सभी भारतीय साधना पद्धतियों में मन को नियंत्रण में लाने के लिये शरीर और आत्मा में विवेक आवश्यक माना गया है। यह विवेक हो जाने पर शरीर का मोह दूर हो जाता है। श्रीमद्भगवद्गीता के अनुसार जब मनुष्य यह जान लेता है कि इन्द्रियों से परे बुद्धि और बुद्धि से परे आत्मा है तो वह आत्मा में स्थित होकर विवेक बुद्धि की सहायता से मन का और उसके द्वारा इन्द्रियों पर नियंत्रण कर लेता है। शंकराचार्य ने वेदान्त का अध्ययन करने से पहले व्यक्ति में नित्य और अनित्य वस्तुओं में विवेक संसार के भोगों से विराग और मोक्ष की तीव्र इच्छा आवश्यक मानी है। ज्ञानयोग में समस्त स्थानों पर नित्य और अनित्य तत्वों में भेद करने पर बल दिया गया है। सभी भारतीय दर्शनों में आत्मा को मन, शरीर और इन्द्रियों से अलग करने पर बल दिया गया है। स्वयं को आत्मा के रूप में जानने के बाद मन पर नियंत्रण करना सरल हो जाता है।

नैतिक भावना

भारतीय आध्यात्मिक साधनाओं में मन की शान्ति के लिये नैतिक चरित्र के विकास को महत्वपूर्ण माना गया है। जैनदर्शन में इसके लिये मैत्री, प्रमोद, कारुण्य और माध्यस्थ्य इन चार भावनाओं पर बल दिया गया है। बौद्धदर्शन में करुणा, मुदिता और उपेक्षा की भावनाओं को महत्वपूर्ण माना गया है। समस्त स्थान पर काम, क्रोध, लोभ, मोह और अभिमान आदि को त्याग कर सभी प्राणियों के प्रति सहानुभूति, करुणा और दया की भावना बढ़ाने पर बल दिया गया है।

श्रद्धा

अन्त में मन के नियंत्रण के लिये गुरु, शास्त्र में और स्वयं में आस्था या श्रद्धा आवश्यक है। अपने में श्रद्धा आत्म विश्वास से प्रकट होती है। गुरु में श्रद्धा उसके वचनों के पालन से प्रकट होती। शास्त्र के वचनों में विश्वास और उनके अनुगमन से प्रकट होती है।

मन के नियंत्रण के विभिन्न उपायों के उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि भारतीय मनोवैज्ञानिकों ने इस समस्या पर चतुर्दिक आक्रमण किया है। भारतीय साधना में आध्यात्मिक, शारीरिक, मानसिक

और प्राणात्मक समस्त प्रकार की साधना पर निर्भर है। भारतीय व्यावहारिक मनोविज्ञान सर्वांग प्रयास पर बल देता है। केवल आस्तिक दर्शनों में ही नहीं बल्कि जैन और बौद्ध जैसे नास्तिक दर्शनों में भी आध्यात्मिक साधना के लिये अन्य समस्त प्रकार की साधना को आवश्यक माना गया है।

जिसका पंचदशी में इस प्रकार वर्णन प्राप्त होता है –

तैरन्तःकरणं सर्वैर्वृत्तिभेदेन तद्द्विधा।

मनोविमर्शरूपं स्याद्बुद्धिः स्यान्निश्चयात्मिका॥[55]

उन पञ्चमहाभूतों में पञ्च सत्वांशों से मिलकर एक अंत:करण नामक द्रव्य उत्पन्न हो जाता है। वह अंत: करण अपने वृत्ति भेद के कारण दो प्रकार का होता है। जब वह विमर्श संशयात्मिका वृत्ति करता है अथवा इस प्रकार कहा जा सकता है कि निश्चय रूप हो जाने पर उसी को बुद्धि के नाम से जाना जाता है।

भारतीय मनोविज्ञान की मान्यताएँ

भारतीय मनोविज्ञान के विकास की कुछ आधारभूत मान्यताएं हैं जो इस प्रकार है –

1. मनुष्य की प्रकृति आध्यात्मिक होती है और भारतीय मनोविज्ञान का जीवन दर्शन से घनिष्ठ सम्बन्ध है।

2. पाश्चात्य देशों के समान भारतीय मनोविज्ञान जीवन के दो पक्षों –अन्त: पक्ष और तथा बाह्य पक्ष को स्वीकार करता है। परन्तु प्रधानता मानव जीवन के अंत:पक्ष को प्रदान करता हैं।

3. यह समस्त विधाओं का अंतिम ध्येय असीम व्यक्ति की आत्मा को असीम आत्मा में स्थापित करना हैं।

4. यह मानव व्यवहार के निर्धारण की मुख्य पद्धति सहज बोध–पद्धति को मानता है। मनुष्य किसी चेतन मानसिक प्रयास के सहज और भावात्मक रूप की अनुभूति है।

55 पंचदशी तत्व विवेक प्रकरण 20

यदि भौतिक जगत में मनोविज्ञान मनोवैज्ञानिक विवेचन के इतिहास में निष्पक्ष रुप से खोजा जाए तो यह प्राप्त होगा कि यूनानी मनोविज्ञान के जन्म के हजारों वर्ष पूर्व भारतीय मनोवैज्ञानिकों ने आत्मविकास, चरित्र निर्माण मनोविज्ञान ,पशु मनोविज्ञान, नारी और पुरुष मनोविज्ञान, यौनमनोविज्ञान इत्यादि मनोविज्ञान के अनेक पहलुओं में महत्वपूर्ण मनोवैज्ञानिक तथ्यों का पता लगाया था। प्राचीन उपनिषदों में मनोवैज्ञानिक तथ्य भरे पड़े हैं और भारत में हजारों साल तक करोड़ों व्यक्तियों ने इन तथ्यों पर गहन अध्ययन करके इसकी प्रमाणिकता सिद्ध की है यदि कहा जाए कि भारतीय मनोविज्ञान दर्शन मनोविज्ञान है तो भी इससे इसका महत्व कम नहीं होता क्योंकि प्राचीन यूनानी मनोविज्ञान भी दार्शनिक मनोविज्ञान ही था।

भारतीय दार्शनिक मनोविज्ञान

भारतीय दार्शनिकों ने जो मनोवैज्ञानिक सिद्धांत उपस्थित किए उनका विवरण भारतीय मनोविज्ञान के ऐतिहासिक विवेचन में सम्मिलित है जो इस प्रकार है-

भारतीय चिंतन मुख्य रूप से दार्शनिक है, इसका उद्देश्य आत्म जगत और परमात्मा के विषय में परम तत्व की खोज करना है। भारतीय दर्शन में जितना ज्ञान पक्ष पर बल दिया गया है उतना ही साधना पक्ष पर भी दिया गया है। यह अभ्यास केवल निरोधात्मक न होकर रचनात्मक भी था। वास्तव में भारतीय दार्शनिकों ने ज्ञान प्राप्त करने में शरीर ,मन और बुद्धि सभी की बड़ी सूक्ष्म और विशद व्याख्या की है। प्राचीन वेद और उपनिषद से लेकर शंकर, वामन और रामानुजन तक सभी दार्शनिकों ने दर्शन के मनोविज्ञान पर विशेष बल दिया है। आधुनिक काल के दार्शनिकों ने भी दर्शन के मनोवैज्ञानिक पक्ष पर जोर दिया है। अतः भारतीय दार्शनिकों ने मानव मनोविज्ञान की अत्यंत सूक्ष्म एवं विशद व्याख्या की है।भारतीय दार्शनिक श्री अरविंद ने मनोविज्ञान के पहलुओं को स्पष्ट किया है। जिन पर पाश्चात्य मनोविज्ञान ध्यान नहीं देता। श्री अरविन्द ने अपने मनोविज्ञान में योग की क्रियाएँ शारीरिक और मानसिक व्याधियों को दूर करके चित्त एवं तुरीय अवस्थाओं तथा चैतन्य के स्वरूप

का सूक्ष्म विश्लेषण किया है। भारतीय दर्शन जीवन के अनुभव पर आधारित था। अत: भारतीय दार्शनिकों ने विभिन्न प्रकार के अनुभवों की सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक खोज की है।[56]

यहाँ यह प्रश्न उपस्थित होता है कि भारतीय मनोविज्ञान क्या है? जिस प्रकार रूसी मनोविज्ञान के क्षेत्र में रूस में हुए मनोवैज्ञानिक अनुसंधान और अध्ययन सम्मिलित होते हैं। इसी प्रकार भारतीय मनोविज्ञान में भारत में अति प्राचीन काल से आज तक हुए मनोवैज्ञानिक अध्ययन एवं अनुसंधान का एक समग्र रूप है। जिस प्रकार फ्रेंच मनोविज्ञान में फ्रेंच संस्कृति और ब्रिटिश मनोविज्ञान में ब्रिटिश संस्कृति का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। उसी प्रकार भारतीय संस्कृति की छाप के कारण भारतीय मनोविज्ञान को अन्य देशों के मनोविज्ञान से अलग किया जा सकता है। यहाँ भारतीय कहने का तात्पर्य यह नहीं है कि अन्य मनोविज्ञान से भिन्न कोई मनोविज्ञान है। किसी भी देश में ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में स्थानीय संस्कृति का प्रभाव अवश्य परिलक्षित होता है और इस प्रभाव के कारण ही उस ज्ञान-विज्ञान को आसानी से स्थानीय जनता आत्मसात कर पाती हैं। अनेक संस्कृतियों में ये मूल्यों के अन्तर से जीवन के विभिन्न पहलुओं पर अधिक जोर दिया गया। उदाहरण के लिए भारतीय संस्कृति में आध्यात्मिक मूल्य सर्वोच्चतम माने जाते हैं। इसी कारण भारत में आध्यात्मिक क्षेत्र में अधिक मनोवैज्ञानिक अनुसंधान हुए हैं।

भारतीय दार्शनिक एवं मनोवैज्ञानिक श्री अरविंद के अनुसार वेद में रहस्यवादी दर्शन और गुप्त सिद्धांत भरे हुए हैं। मंत्रों के देवी-देवता मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं के प्रतीक हैं। जैसे- सूर्य बुद्धि का प्रतीक है, अग्नि संकल्प का प्रतीक है, सोम अनुभूति का प्रतीक है। वेद प्राचीन यूनान के आर्फिक और एल्युसिनियम के समान रहस्यात्मक हैं। श्री अरविंद के अपने शब्दों में "मैं जो परिकल्पना उपस्थित करता हूँ वह यह है कि ऋग्वेद स्वयं एक महान अभिलेख हैं जो कि मानव विचार से उस आदिकाल से हमारे पास बना है जिसके ऐतिहासिक एल्युसीनियम और आरंभिक रहस्य असफल अवशेष थे, जिस काल में जाति का आध्यात्मिक और मनोवैज्ञानिक ज्ञान कुछ कारणों से जिनको कि

56 त्रिवेदी. मानसी शुक्ला ,वैदिक अनुष्ठनों का मनोवैज्ञान अनुशीलन , नाग पब्लिशर्स ,प्रथम संस्करण, दिल्ली : 2004

अब निश्चित करना कठिन है, प्रतीकों के मूर्त और भौतिक रूप के आवरण में छिपा दिया गया था। जो भ्रष्टों से अर्थ को छुपा लेते थे और दीक्षितों को प्रकट कर देते थे।

योगवाशिष्ठ के अनुसार मन की शक्तियाँ-[57]

(क) दूसरे के विचार तथा भावों को जानने की शक्ति।

(ख) अणुरूप प्राप्ति की शक्ति तथा सूक्ष्म आकार धारण करने की क्षमता।

(ग) पर्वत के समान स्थिरता और भार प्राप्ति की शक्ति।

(घ) शरीर बढ़ाने की शक्ति।

(ड) आकाश गमन शक्ति।

(च) सूक्ष्म लोकों के प्राणियों के दर्शन की शक्ति।

(छ) दूसरे शरीर में प्रवेश की शक्ति।

(ज) इच्द्धानुसार एक ही काल में अनेक शरीर धारण करना।

(झ) विश्व में विना रूकावट के विचरण करने की शक्ति।

शाण्डिल्योपनिषद् के अनुसार मन की शक्ति-

1. अलौकिक दृष्टि।
2. त्रिकाल के विषयों का ज्ञान।
3. सभी प्राणियों की भाषा का ज्ञान।
4. पूर्व जन्मों का ज्ञान।
5. दूसरे के मन का ज्ञान।
6. सम्पूर्ण विश्व का ज्ञान।
7. आकाश गमन का ज्ञान।
8. ध्रुव तारे की गति का ज्ञान।

57 योगवाशिष्ठ, उत्पत्ति प्रकरण १५-३०

9. शरीर रचना का ज्ञान।

10. आत्मज्ञान।

11. सिद्धदर्शन की प्राप्ति।

12. हनुमान के समान शारीरिक बल की प्राप्ति।

13. भूख प्यास से मुक्ति की प्राप्ति।

14. अद्भुत दृढ़ता।

15. सर्वत्र गमन शक्ति।

ऋग्वेद के पुरुषसूक्त के प्रथम मंत्र में अनंत शक्ति संपन्न सर्वव्यापी पुरुष का वर्णन किया गया है तथा दूसरे मंत्र में कहा गया है कि जो कुछ हुआ है और जो कुछ होने वाला है वह सब पुरुष ही है क्योंकि संसार की उत्पत्ति का कारण पुरुष ही है अर्थात् उस पुरुष पर काल परिवर्तन का किसी भी प्रकार से प्रभाव नहीं पड़ता है। पुरुष सूक्त में व्यक्ति और उसके परिवेश दोनों के मूल में पुरुष की स्थापना करके दोनों में घनिष्ठ संबंध बताया गया है। आधुनिक मनोविज्ञान व्यक्तित्व के अनुकूलन और संकलन में समष्टि की भावना को आवश्यक मानता है तथा पंचम मंत्र में मन शब्द का उल्लेख हुआ है जिसका तात्पर्य अन्नमय कोश के साथ-साथ प्राणमय कोश में मनोमय और विज्ञानमय कोश को भी सम्मिलित किया गया है।

वैदिक ग्रंथों में आत्मा की प्रकृति के संबंध में भी विचार किया गया है। इनमें आत्मा का दो अर्थों में प्रयोग किया गया है पहला-शरीर की जीवन शक्ति के रूप में और दूसरा-सम्पूर्ण व्यक्ति के रूप में। ऋग्वेद में वायु द्वारा आत्मा का निर्देश किया गया है। ऋग्वेद के अनुसार आत्मा जीवन प्राण तथा चैतन्य रूप है। जिसके जागृत, स्वप्न और सुषुप्ति की अवस्था में जन्म और मरण की अवस्थाएँ पिरोई गई हैं। अनेक स्थानों पर आत्मा को अहम के रूप में लिया गया है। वेद में आत्मा का विवरण बहुत कुछ प्राचीन यूनानी विचारों से मिलता जुलता प्रतीत होता है।

मनोविज्ञान दो शब्दों से मिलकर बना है 'मन एवं विज्ञान' सामान्य दृष्टि से देखे तो वैज्ञानिक के अनुसार मन का अध्ययन ही मनोविज्ञान है अर्थात् जिन तरीकों से जिन विभिन्न विधियों से मन का अध्ययन किया जाना है वह वैज्ञानिक है। यदि विज्ञान की कसौटी पर खरे उतरने वाले तरीकों से मन का अध्ययन किया जाता है तो उन्हें ही स्वीकार कर लिया जाना चाहिए, क्योंकि विज्ञान की कसौटी पर खरे उतरने से सहज ही प्रश्न उत्पन्न हो जाता है कि यह विज्ञान क्या है? इसकी कसौटी क्या है? इत्यादि प्रश्न हमारे मस्तिष्क में उत्पन्न होते हैं। करलिंगर नामक एक प्रसिद्ध विद्वान् ने विज्ञान को परिभाषित करने हेतु एक उक्ति दी है जो इस प्रकार है- "विज्ञान सामान्य रूप से समझ का क्रमबद्ध रूप से नियंत्रित विस्तार है", इस प्रकार इस उक्ति में शब्द बड़े ही गूढ एवं गहरे निहितार्थ हैं। 'सामान्य समझ' वह समझ है जो कि सामान्य व्यक्तियों में उनके जीवन में घटने वाली विभिन्न प्रकार की घटनाओं के लिए होती है। जीवन में घटने वाली घटना केवल घटना नहीं होती है। परन्तु उस घटना से पहले उसका कारण एवं उस घटना के पश्चात उसका परिणाम होता है। प्रत्येक घटना में उसका कारण एवं प्रभाव विद्यमान होता है।[58]

प्रत्येक व्यक्ति अपनी सामान्य समझ के अनुरूप घटना के कारण का अनुमान एवं संभावित परिणाम की व्याख्या करता है तब यह सामान्य समझ नियंत्रित एवं निर्देशित हो जाती है। इस प्रकार सामान्य समझ को व्यवस्थित एवं क्रमबद्ध संगठित रूप में दिशा मिल जाती है। तब यह सामान्य समझ वैज्ञानिक ज्ञान प्रदान करने वाली हो जाती है। इस प्रकार समझ के विकास के रूप का वैज्ञानिक रूप से अध्ययन करना ही मनोविज्ञान कहलाता है। इस समझ को शाब्दिक रूप से यह संक्षिप्त रूप से बोध भी कहा जा सकता है। समझ के कई स्वरूप होते हैं जिनमें वैचारिक समझ एवं भावात्मक समझ प्रमुख है। परन्तु यह दोनों समझ कठिनाई रूप में दिखलाई नहीं देते हैं। अपितु स्थूल रूप में दिखालाई पड़ते है। इसलिए कहा जा सकता है कि मानव की समझ उसके व्यवहार से परिवर्तित हो जाती है। परंतु यह व्यवहार मनुष्य की सोच एवं भावनाओं पर आधारित होती है। इस प्रकार विस्तृत रूप से यह

58 रूपम . डॉ ,योग मनोविज्ञान.मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स .दिल्ली : 2017

परिभाषित किया जा सकता है कि-मानसिक प्रक्रिया एवं व्यवहार के अध्ययन का विज्ञान ही मनोविज्ञान है।[59]

मनोविज्ञान के अध्ययन की आवश्यकता

मनोविज्ञान के अध्ययन की आवश्यकता क्यों पड़ी ? मनोविज्ञान के अध्ययन की क्या आवश्यकता थी? इस प्रकार इन सब शब्दों के उत्तर हम सभी को अपने जीवन में उतर कर सोचने समझने से प्राप्त होता है। इसी तरह हम सभी अपने जीवन में जन्म से लेकर मृत्यु तक विभिन्न प्रकार के अनुभवों तथा जानकारी से गुजरते हैं। अपने-अपने जीवन की घटनाओं को समझना,चुनौतियों से निपटना,संबंधों का विकास और रोग आदि इसमें सम्मिलित होते हैं। इन अनुभवों के प्रकाश में हम अपने जीवन के महत्वपूर्ण निर्णय लेते हैं। यह निर्णय कभी सही तो कभी गलत साबित हो जाते हैं। इस प्रकार सूचना एवं समझ उनकी विश्लेषण कर पाने की क्षमता पर निर्भर करता है। इसके साथ ही हमारी भावनाएँ,दशाएँ एवं पूर्ण अनुभव भी इसमें महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। सही निर्णय हमें सही दिशा प्रदान करते हैं। तथा लक्ष्य की प्राप्ति होती है। सही निर्णय हमारे जीवन को मंगलमय बनाते हैं।[60]

इस प्रकार ऐसी परिस्थिति में यह प्रश्न उपस्थित होता है कि यह निर्णय लेने की प्रक्रिया किस प्रकार घटित होती है ? कौन से कारक इसमें बाधक होते हैं ? कौन से कारक इसमें सहायक होते हैं ? यदि इन प्रश्नों का सही उत्तर हमें प्राप्त होता है, तो हम निर्णय करने की प्रक्रिया को समझ सकते हैं तथा संक्षिप्त रूप में यदि कहे तो हम अपने जीवन में मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया के माध्यम से समस्त कार्यों को संचालित करते हैं जिनकी जानकारी हमें विस्तृत रूप में प्राप्त करनी चाहिए। इसलिए मनोविज्ञान के अध्ययन की आवश्यकता पड़ती है। जिससे हम अपने दैनिक कार्यों की जानकारी प्राप्त कर सकें।

59 शर्मा. राम नाथ.रचना शर्मा, भारतीय मनोविज्ञान ,एटलान्टिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूट, दिल्ली : 2005
60 भरतीय मनोविज्ञान, रामनाथशर्मा

भारतीय मनोविज्ञान के आदि स्रोत

वेद के पश्चात् यदि अवलोकन किया जाये तो उपनिषद् का स्थान सर्वोपरि है। उपनिषद् दार्शनिक विचार धारा का प्रथम स्रोत हैं। उसमें आत्मा-विषयक दृष्टिकोण दृष्टिगोचर होता है। यही कारण है कि उसमें अनेक मनोवैज्ञानिक तथ्य देखने को मिलते है।

भारतीय मनोविज्ञान का आधार वेद के बाद उपनिषद् हैं। आध्यात्मिक साधना में रत ऋषि मुनियों ने अनेक महत्त्वपूर्ण तथ्यों का ज्ञान प्राप्त किया है। प्रो.रानाडे के अनुसार - (हिंदी अनुवाद) "यदि हम बाद के योगदर्शन के यम और नियम जो प्राचीन काल से ही उपनिषदों में वर्णित है जिसमें योग के विभिन्न तत्त्व यथा आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा और ध्यान को जोड़ दे, जो कि समाधि के पूर्वांग हैं तो योग की पूर्ण अष्टांग योजना बन जाती है।" यदि ध्यान दिया जाये तो योग दर्शन के अधिकांश सूत्र उपनिषद् से प्राप्त होते हैं। इस प्रकार योग और उपनिषद् का सम्बन्ध इस प्रकार हैं –

आसन, प्रत्याहार, प्राणायाम और समाधि

श्वेताश्वेतरोपनिषद् का अध्ययन करने पर दृष्टिगोचर होता है कि इसमें आसन, प्रत्याहार, प्राणायाम, योग, शारीरिक प्रभाव और समाधि का वर्णन प्राप्त होता है।

धारणा

धारणा का उल्लेख कठोपनिषद् के एक श्लोक में प्राप्त होता हैं कि जहाँ पर इन्द्रिय, मन और बुद्धि की समता को योग की परमावस्था कहा गया हैं।

तां योगमिति मन्यन्ते स्थिरमिन्द्रियधारणाम्।

अप्रमत्तस्तदा भवति योगो हि प्रभवाप्ययौ ।।[61]

61 कठोपनिषद् 2/3/11

ध्यान

ध्यान श्वेताश्वतरोपनिषद् में है जहाँ पर ईश्वर के प्रति ध्यान लगा कर उसे अपने अंतरात्मा में खोजने के लिए कहा गया है।

ध्यान निर्मथनाभ्यासा देवं पश्येंन्निगुढवत् । [62]

ईश्वर

योग के ईश्वर का वर्णन कठोपनिषद् में है जिसमें कहा गया है कि –

सूर्यो तथा सर्वलोकस्य चक्षु: न लिप्यते चाक्षुषैर्बाह्मदोषै: ।

एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा न लिप्यते लोकदु:खेन ब्राह्म:।।[63]

जहाँ पर ईश्वर को संसार के दु:खों से परे बतलाया गया है, जिस प्रकार सूर्य जगत का नेत्र है परन्तु वह आखों के दृष्टि से परे है।

शारीरिक पक्ष

योग के शारीरिक पक्ष का वर्णन कौषितकी उपनिषद् और मैत्रायणी उपनिषद् में प्राप्त होता है।वेद में भारतीय दर्शन का शैशव रूप दिखाई पड़ता है, जिसमें मानव ने प्राकृतिक शक्तियों को परम तत्व मान लिया है तथा उपनिषद् में उसका प्रौढ़ अर्थात् विकसित रूप देखने को मिलता है। छान्दोग्योपनिषद् में सत्यकाम जाबाल और उसके शिष्य उप्कोश्ला की कथा में यह बात स्पष्ट की गयी है। प्राकृतिक शक्तियाँ परम तत्व नहीं है, वह उस परम तत्व का बाह्य रूप आवरण है। परन्तु बाद में प्राकृतिक शक्तियों का स्थान शारीरिक शक्तियों ने ले लिया। इस प्रकार छान्दोग्योपनिषद् में परम तत्व को चक्षु अथवा शरीर की उष्णता कहा गया है। मैत्रीयणीयोपनिषद् में उसको वह स्वर समझा गया है जो कि कान बन्द करने पर भी सुनाई देता है।[64]

---

62 श्वेताश्वतरोपनिषद् 1/14

63 कठोपनिषद् 2/2/11

64 चौबे .सरयूप्रसाद ,मनोविज्ञान का ऐतिहासिक रुपरेखा.विनोद पुस्तक मंदिर आगरा : 1998

कठोपनिषद् के अनुसार- "आत्मा के प्रकाशित होने से समस्त वस्तुएँ प्रकाशित होती है, उसके प्रकाश से सभी द्योतित होते हैं।" मुण्डकोपनिषद् में कहा गया है कि – 'शब्दों में अग्नि, उसका शिर है चंद्रमा और सूर्य उसकी आखें है ,आकाश की चारों दिशाएँ उसके स्रोत हैं वेद उसका वाक्य है ,पवन उसकी श्वास है, विश्व उसका हृदय है, क्योंकि वह समस्त जीवों का अंतर्यामी आत्मा हैं। आत्मा ज्ञान स्वरूप है, आत्मा साक्षी है।

उपनिषदों में आत्मा का विकास

उपनिषदों में आत्मा के विकास के जिस साधन का उल्लेख किया गया हैं वे मनोवैज्ञानिक दृष्टि से मानव मनोविज्ञान में महत्वपूर्ण हैं। आध्यात्मिक जीवन के लिए सर्वप्रमुख है, उसकी अंतर्मुखता भारतीय मनोविज्ञान में मन का नियंत्रण और बाह्य विषयों से उसे विमुख करना आत्म विकास के लिए सर्वप्रमुख मन को बताया गया है। अन्तर्मुखता के पश्चात् आत्म शुध्दि की आवश्यकता है इसका विवरण मुण्डकोपनिषद् में परिलक्षित होता है जिसमें कहा गया है कि सत्य,तपस्वी ,जीवन,यथार्थ बोध और ब्रह्मचर्य आदि को जीवन के लिए आवश्यक बताया गया है। उपनिषदों में शिक्षा मनोविज्ञान से गुरु को अत्यधिक महत्व दिया गया है। क्योंकि गुरू से दीक्षा ग्रहण किये बिना किसी भी लक्ष्य को नहीं प्राप्त किया जा सकता।[65]

उतिष्ठत जाग्रत वरान् प्राप्य तत् निबोधत।
निशिता क्षुरस्य धारा दुरत्यया दुर्गं तत् पथः इति कवयः वदन्ति ॥[66]

कठोपनिषद् में कहा गया है कि "उठो जागो और जो तुमसे श्रेष्ठ हैं उससे सीखों क्योंकि आत्मलाभ का पथ तलवार की धार पर चलने के समान है।" ऋषि मुनि के द्वारा इसे दुर्गम पथ कहा गया है और आगे कहा गया है कि जो गुरु स्वयं आत्म ज्ञान न किया हो तब तक वह किस प्रकार की दीक्षा दे सकता है। छान्दोग्योपनिषद् में गान्धारवासी मनुष्य की कथा में जब डाकू उसकी आँखे मूंद कर उसे उसके देश से दूर ले जाकर जंगल में छोड़ देते है,तब किसी अन्य व्यक्ति के मार्ग को बतलाने

65 वैदिक अनुष्ठनों का मनोवैज्ञान अनुशीलन
66 कठ उपनिषद् 1/3/14

के पश्चात् अपने देश तक वापस पहुँच जाता है। इस कथा के द्वारा गुरु के महत्व को बहुत सुन्दर तरीके से समझाया गया कि आत्म साक्षात्कार के लिए किस प्रकार गुरु की आवश्यकता होती है।

अरविन्द के चिन्तन में मनोविज्ञान

मनोवैज्ञानिक विचारों में श्री अरविन्द ने मनोविज्ञान के पक्ष में अपना मत उपस्थित करते हुए जीवात्मा और मानस का अति सूक्ष्म विश्लेषण किया है उन्होंने मानसिक स्तर की अनेक श्रेणियाँ मानी है जैसे उच्चतर मानस, ज्योतिर्मय मानस, अपरोक्ष अनुभूति का मानस और अतिमानस आदि। परन्तु यहाँ केवल जीवात्मा के विचार प्रस्तुत है।

जीवात्मा

श्री अरविन्द के अनुसार बाह्य जड़, प्राण एवं मन के पीछे अन्तरंग जड़ -प्राण और मानस है। इसी प्रकार पुरूष भी दो है -

1.बाह्य पुरुष

2.इच्छा पुरुष

जो हमारी वासनाओं और शक्ति में ज्ञान तथा प्रसन्नता प्राप्त करने के प्रयत्नों में कार्य करते है और अन्तरंग पुरुषों अथवा वास्तविक चैतन्य पुरुष को प्रकाश, प्रेम, प्रसन्नता और सत्ता से परिष्कृत सत्य की एक शुद्ध शक्ति है। अन्तरंग पुरूष जड़ प्राण और मानस नहीं है। परन्तु वह ‘‘इन सबका एक विशेष आत्मानन्द प्रकाश प्रेम प्रसन्नता सौन्दर्य और सत्ता के परिष्कृत तत्व में प्रस्फुटित एवं पुष्पित होना है। जिस प्रकार अतिमानस के द्वारा और शुद्ध सत्ता जड़ के द्वारा कार्य करती है, उसी प्रकार आनन्द का दैवी तत्व पुरूष के द्वारा कार्य करता है। इसका जागरण ही हमारे आध्यत्मिक जीवन का मूलमन्त्र है, आत्मा के सर्वदा दो रूप है।[67]

- आत्मा
- अन्तरात्मा

---

67 भारतीय मनोविज्ञान ,रामनाथशर्मा.रचना शर्मा

जिसे हम अन्तरंग पुरूष भी कहते है। सदा आत्मा की अनुभूति इनमें से किसी एक रूप में अथवा इन दोनों ही रूपों में हो सकती है। इन दोनों अनुभूतियों में अन्तर यही है कि आत्मा सम्पूर्ण संसार में व्याप्त प्रतीत होता है और अन्तरात्मा व्यक्ति विशेष के मन, प्राण, और शरीर को धारण करने वाले व्यक्ति पुरूष के रूप में प्रतीत होता है। मनुष्य की सत्ता का निर्माण किन तत्वों से हुआ है। हृत्पुरूष, अन्तरङ्ग, मनोमय, प्राणमय और आनन्दमय, पुरूष और बाह्य पुरूष अर्थात् मन, प्राण एवं शरीर की सर्वथा बाह्य प्रकृति जो अन्तरंग पुरूषों के बाहर प्रकट होने का यन्त्र या कारण है। वह स्वयं एक परमात्मा का अंश है, ''केन्द्रिय पुरूष का प्रयोग हमारे योग में साधारण तथा परमात्मा के उस अंश के लिए होता है।[68] जो हमारे अन्दर है और हमारे तत्वों को धारण करता है। जन्म मृत्यु से परे रहता है। हृत्पुरूष जीवन के व्यक्तिकरण के पीछे रहकर उसको धारण करता है।[69]

अतिमानस

उस असीम चेतना से इस सीमित जगत की रचना के लिए मध्यस्थ तत्व की आवश्यकता होती है, एक चुने हुए ज्ञान का सिद्धान्त जो असीम तत्व से सीमित वस्तुओं का सृजन कर सके। यह मध्यस्थ तत्व मानस नहीं हो सकता। क्योंकि इसमें मायावाद की सृष्टि होती है। वह ज्ञान का एक ऐसा रूप होना चाहिए जो सत्ता के यथार्थ सत्य के लिए हो। वह परम सत्य चैतन्य है। श्री अरविन्द ने सत्य चैतन्य को सीमित प्राणी और जगत् के सृष्टा को अतिमानस की संज्ञा दी है। वह सच्चिदानन्द एवं संसार का सन्धिस्थल है। सृष्टा के रूप में ईश्वर ही अतिमानस है इसको श्री अरविन्द सत्यवृत्ति भी कहते हैं। इससे उनका तात्पर्य है कि सत् तत्व से उत्पन्न और न उसकी प्रकृति में भाग लेने वाली की संतान है और न स्वप्न निर्मात्री यथार्थ प्राणियों का सृजन करने वाली चेतना शक्ति की एक विशेष शक्ति है। कांट के समान श्री अरविन्द का मत है कि ''मानस असीम पर अधिकार नहीं कर सकता वह उसके अधिकार में रह सकता है।''

68 भारतीय मनोविज्ञान ,रामनाथशर्मा . रचना शर्मा

69 चौबे .सरयूप्रसाद ,मनोविज्ञान का ऐतिहासिक रुपरेखा.विनोद पुस्तक मंदिर आगरा : 1998

भारतीय मनोविज्ञान में भूत और भविष्य

वर्तमान भारतीय मनोविज्ञान जिस अवस्था में है। व्यावहारिक स्तर पर इतिहास में इसकी ऐसी अवस्था नहीं दिखायी देती यह अपने मूल उद्गम तथा अर्थ से इतना भटक गया है कि मनोविज्ञान शब्द को परिभाषित करना कठिन हो गया है। अर्थात् मनोविज्ञान क्या है यह किस वस्तु का अध्ययन करता है इसका हमारे भारतीय विद्वानों को कभी आभास नहीं हुआ क्योंकि उन्होंने इस तरफ कभी ध्यान नहीं दिया गया और कभी बात होने पर अपनी अज्ञानता छिपाने के लिए वे सीधे बात करते हुए इसको नकारते रहे है। यही कारण है कि उन्होंने वेद तथा उपनिषद् का कभी मनोवैज्ञानिक चिन्तन नहीं किया।[70]

मनोविज्ञान का अस्तित्व कभी भी इस नाम के अन्तर्गत नहीं रहा। किसी न किसी कारणवश मनोविज्ञान के ऊपर गलत या विनाशक प्रवृत्तियों धार्मिक राजनीतिक या नैतिकता पर संदेह किया जाता था इसी कारण इसे अलग-अलग छद्म नामों का सहारा लेना पड़ा। हजारों साल से मनोविज्ञान दर्शन शास्त्र के नाम से अस्तित्व में रहा। भारत में सभी प्रकार के योग मूलतः मनोविज्ञान है- जिसे दर्शन के छह अंगो में से एक माना गया है। दर्शन शास्त्र के सभी अंग जैसे- न्याय(तर्क) बौध सिद्धान्त सौन्दर्यशास्त्र मनुष्य के मन या इन्द्रियों के कार्यों का उल्लेख एवं गत्यात्मक क्रिया को लेते हैं। उपर्युक्त चारों क्रियाएँ निद्रा में भी प्रकट हो सकती है। किन्तु इनकी अभिव्यक्ति में किसी प्रकार की क्रिया या विश्वनीयता नहीं होती।[71]

आधुनिक काल में भारतीय मनोविज्ञान का दो भिन्न दृष्टिकोणों में अध्ययन किया गया है-

(1) ऐतिहासिक

(2) समस्यात्मक

एक ओर वेद,उपनिषद्,भगवद्गीता, महाभारत, सांख्य-योग न्याय-वैशेषिक मीमांसा-वेदान्त इत्यादि आस्तिक सम्प्रदाय और जैन, बौद्ध तथा चार्वाक इत्यादि नास्तिक सम्प्रदायों के मनोवैज्ञानिक

---

70 भारतीय मनोविज्ञान, रामनाथशर्मा, रचना शर्मा

71 योग मनोविज्ञान

विचारों का अध्ययन किया गया है। इसी अध्ययन के क्षेत्र में कुछ भारतीय मनोवैज्ञानिक है जिनके ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं जो इस प्रकार है

श्रीमति रायज डेविड्स का – बौद्ध मनोविज्ञान।

भीखन लाल आत्रेय का - योग वाशिष्ठ मनोविज्ञान।

टी. जी कलघटगी का - जैन मनोविज्ञान।

शांति प्रकाश आत्रेय का - योग मनोविज्ञान।

इस प्रकार का अध्ययन भारत के दृष्टिकोण में हुआ है। इसी दृष्टिकोण में यदुनाथ सिन्हा आदि का अध्ययन उल्लेखनीय है। किन्तु भारतीय साहित्य में उपलब्ध विभिन्न शाखाओं के विषय में मनोविज्ञान की जानकारी प्राप्त होती है।

1.3 आधुनिक मनोविज्ञान

भारत वर्ष में मन के विषय में अध्ययन अति प्राचीन काल से होता आ रहा हैं, योगवाशिष्ठ और बौद्धदर्शन आदि में जो मन की विभिन्न शाखाओं का आधुनिक काल तक जो भी विचार किया गया है, वह इतना गम्भीर और मौलिक है कि संसार की आध्यात्मिक चिंतन करने वाली मानव जातियों को उनसे महत्त्व का प्रकाश मिल सकता हैं। पश्चिम में मन का अध्ययन सर्वप्रथम यूनानी लोगों के द्वारा किया गया था। इस अध्ययन को उन्होंने मनोविज्ञान अथवा आत्मज्ञान के नाम से अभिहित किया है।

मध्यकाल में यूरोप में मन के अध्ययन का ह्रास हो गया, परन्तु कुछ समय के पश्चात् यूरोप में मनोविज्ञान का अध्ययन आधुनिक समय के साथ होना प्रारम्भ हो गया। इस अध्ययन को प्रारम्भ में दार्शनिकों के माध्यम से अग्रेषित किया गया क्योंकि दर्शन में कही गयी बातों को समझने के लिए मनोविज्ञान का ज्ञान आवश्यक माना जाता था। लॉक, बर्कले, ह्यूम आदि विद्वानों ने मनोविज्ञान के

सिद्धान्त को आगे बढ़ाया, परन्तु ये सभी दार्शनिक थे और इन्होंने अपने दार्शनिक सिद्धान्तों की पुष्टि के लिए मन की क्रियाओं का अध्ययन करके उस पर प्रकाश डाला।[72]

मनोविज्ञान (Psychology) वह शैक्षिक व अनुप्रयोगात्मक विद्या है जो प्राणी (मनुष्य,पशु आदि) के मानसिक प्रक्रियाओं (mental processes), अनुभवों तथा व्यक्त व अव्यक्त दोनों प्रकार के व्यवहारों का एक क्रमबद्ध तथा वैज्ञानिक अध्ययन करती है।[73]

दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि मनोविज्ञान एक ऐसा विज्ञान है जो क्रमबद्ध रूप से (systematically) प्रेक्षणीय व्यवहार (observable behavior) का अध्ययन करता है तथा प्राणी के भीतर के मानसिक एवं दैहिक प्रक्रियाओं जैसे- चिन्तन, भाव आदि तथा वातावरण की घटनाओं के साथ उनका सम्बन्ध जोड़कर अध्ययन करता है। इस परिप्रेक्ष्य में मनोविज्ञान को व्यवहार एवं मानसिक प्रक्रियाओं के अध्ययन का विज्ञान कहा गया है। 'व्यवहार' में मानव व्यवहार तथा पशु व्यवहार दोनों ही सम्मिलित होते हैं। मानसिक प्रक्रियाओं के अन्तर्गत संवेदन (Sensation), अवधान (attention), प्रत्यक्षण (Perception), सीखना (अधिगम), स्मृति, चिन्तन आदि आते हैं।[74]

मनोविज्ञान का शाब्दिक अर्थ

'मनोविज्ञान' शब्द ग्रीक भाषा के 'साइको' (Psyche) तथा 'लॉगस' (Logos) शब्द से मिलकर बना है।

'साइको' का अर्थ 'आत्मा' (Soul) और 'लोगस' (Logos) शब्द का अर्थ 'विज्ञान' (Science) या 'अध्ययन' है।[75]

---

72 चौबे .सरयूप्रसाद ,मनोविज्ञान का ऐतिहासिक रुपरेखा.विनोद पुस्तक मंदिर आगरा : 1998

73 वही

74 मनोविज्ञान और जीवन . लालजीराम शुक्ल

75 वही

ग्रीक (यूनानी) दार्शनिकों के अनुसार मनोविज्ञान

आत्मा का विज्ञान (16वीं सदी तक)

16वीं शताब्दी में ग्रीक (Greece) देश में दार्शनिकों ने इसके शाब्दिक अर्थ के अनुसार इसे आत्मा का अध्ययन करने वाला विज्ञान माना है। इसी शाब्दिक अर्थ के कारण मनोविज्ञान को 'आत्मा का विज्ञान' माना जाता है। ईसा के पांच सौ वर्ष पूर्व से 16वीं शताब्दी तक मनोविज्ञान के अर्थ के सम्बन्ध में यही धारणा प्रचलित रही।

इन यूनानी दार्शनिको में प्लेटो (Plato), अरस्तु (Aristotle) तथा डैकार्टे (Descartes) उल्लेखनीय और प्रमुख है।

मनोविज्ञान मन/मस्तिष्क का विज्ञान (17वीं,18वीं शताब्दी में)

जे.एस.रौस के अनुसार – पहले मनोविज्ञान का अर्थ आत्मा से लगाया जाता था परन्तु यह परिभाषा अस्पष्ट है क्योंकि हम इस प्रश्न का संतोषजनक उत्तर नहीं दे सकते है कि 'आत्मा' क्या है **?** अतः **16** वीं शताब्दी में मनोविज्ञान का यह अर्थ अस्वीकार कर दिया गया। आधुनिक मनोविज्ञान की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में इसके दो सुनिश्चित रूप दृष्टिगोचर होते हैं। एक तो वैज्ञानिक अनुसंधानों तथा अविष्कारों द्वारा प्रभावित वैज्ञानिक मनोविज्ञान तथा दूसरा दर्शनशास्त्र द्वारा प्रभावित दर्शन मनोविज्ञान। वैज्ञानिक मनोविज्ञान **19**वीं शताब्दी के उत्तरार्ध से आरंभ हुआ है। सन् **1860** ई**.** में फेक्नर **(1801-1887)** ने जर्मन भाषा में **"**एलिमेंट्स आव साइकोफ़िज़िक्स**"** **(**इसका अंग्रेजी अनुवाद भी उपलब्ध है**)** नामक पुस्तक प्रकाशित की**,** जिसमें कि उन्होंने मनोवैज्ञानिक समस्याओं को वैज्ञानिक पद्धति के परिवेश में अध्ययन करने की तीन विशेष प्रणालियों का विधिवत वर्णन किया है जो कि निम्नलिखित है**-**

1.मध्य त्रुटि विधि

2.न्यूनतम परिवर्तन विधि

3.स्थिर उत्तेजक भेद विधि

आज भी मनोवैज्ञानिक प्रयोगशालाओं में इन्हीं प्रणालियों के आधार पर अनेक महत्वपूर्ण अनुसंधान किए जाते हैं।

17वीं शताब्दी तथा **18**वीं शताब्दी के दार्शनिकों ने जिनमें लिबिनिज, हॉब्सन, जॉन लॉक, कांट, ह्यूम, पोम्पो लॉजी, थॉम्स रीड आदि का नाम उल्लेखनीय हैं,आदि ने **'Psyche'** का अर्थ मन व मस्तिष्क बताया और कहा कि मनोविज्ञान की विषय-वस्तु मन है। फलत: मनोविज्ञान को मन के अध्ययन का विज्ञान माना गया।

मनोविज्ञान चेतना का विज्ञान (19वीं शताब्दी में)

मन का विज्ञान मानने वाले दार्शनिकों की परिभाषाओं में मुख्यत: दो तरह के दोष पाए गए। प्रथम आत्मा या मन एक ऐसी अमूर्त वस्तु है जिसे देखा या सुना नहीं जा सकता। फलत: इसका अध्ययन वैज्ञानिक ढंग से संभव नहीं है और न इन पर कोई प्रयोग ही किया जा सकता है।

द्वितीय मनोविज्ञान को मन या आत्मा का विज्ञान मान लेने से उसकी विषय-वस्तु अस्पष्ट ही बनी रहती है, क्योंकि इन शब्दों का प्रयोग अनेक अर्थों में किया जाता है। मनोविज्ञान में यह किस अर्थ में प्रयुक्त किया जाये, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता।

फलस्वरुप मनोविज्ञान की विषय-वस्तु मन या आत्मा से हटकर मानसिक क्रियाएँ या चेतन अनुभूति हो गई।

इस परिभाषा को स्वीकारने वाले मनोवैज्ञानिकों को संरचनावादी कहा गया,जिसमें विलियम वुण्ट व ई. बी. टिचेनर प्रमुख थे। चेतना का विज्ञान मानने वाले अन्य वैज्ञानिक विलियम जेम्स एवं जेम्स हसली थे।

चेतन अनुभूति का अर्थ संवेदना, कल्पना, प्रतिमा तथा भाव आदि मानसिक क्रियाओं से है।

मनोविज्ञान की प्रथम प्रयोगशाला 1879 में विलियम वुण्ट ने लिपजिंग विश्वविद्यालय में स्थापित की थी। विलियम वुण्ट को मनोविज्ञान का जनक कहा जाता है। तथा आधुनिक मनोविज्ञान का जनक विलियम जेम्स को कहते है।

संरचनावादियों की परिभाषा में सबसे प्रमुख दोष यह बताया गया कि चेतन अनुभूति का वस्तुनिष्ठ ढंग से अध्ययन नहीं किया जा सकता है और मनोविज्ञान के प्रयोगात्मक स्वरूप की व्याख्या नहीं हो पाती तथा इसमें मात्र चेतन अनुभूति के अध्ययन पर प्रकाश डाला गया है, परन्तु अभिव्यक्ति के सभी अनुभव चेतन नहीं होते, बल्कि अधिकांश अनुभव अचेतन होते हैं।

इस प्रकार चेतना को विज्ञान के रूप में मनोविज्ञान की परिभाषा में अस्वीकार कर दिया क्योंकि इस परिभाषा से यह बिल्कुल स्पष्ट नहीं होता है कि मनोविज्ञान मन की सभी अवस्थाओं का अध्ययन करता है या नहीं।

मनोविज्ञान व्यवहार का विज्ञान (20वीं शताब्दीं से अब तक)

चेतन अनुभूति को मनोविज्ञान की विषय-वस्तु से अलग कर दिया गया तथा उसकी जगह व्यवहार को रखा गया जिसका स्वरुप अधिक वस्तुनिष्ठ था, क्योंकि इसे देखा या सुना जा सकता है। दौड़ना, रोना, हँसना, सोचना आदि व्यवहार के प्रमुख उदाहरण हैं।

वाटसन के अनुसार, “मनोविज्ञान, व्यवहार का निश्चित या शुद्ध विज्ञान है।” मनोविज्ञान में व्यवहारवाद की शुरुआत 20वीं सदी के पहले दशक में जे.बी. वाटसन द्वारा 1913 में जॉन हॉपीकन्स विश्वविद्यालय में की गयी। वाटसन को व्यवहारवाद का जनक कहा जाता है।

मनोविज्ञान को व्यवहार का विज्ञान मानने वाले वैज्ञानिक- जे.बी.वाटसन, विलियम वुडवर्थ, विलियम मैक्डुगल एवं बी. एफ. स्किनर है।

मनोविज्ञान के अर्थ परिवर्तन को वुडवर्थ ने निम्न प्रकार से परिभाषित किया है - “सर्वप्रथम मनोविज्ञान ने अपनी आत्मा को छोडा, फिर अपने मन को त्यागा, फिर अपनी चेतना खोई और अब यह व्यवहार के ढंग को अपनाये हुए है।”

आधुनिक मनोविज्ञान का उदय

मनोविज्ञान के इतिहास में एविंगहास ने 1908 में अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा हैं कि – मनोविज्ञान का अतीत अति प्राचीन है परन्तु इसका इतिहास अति-संक्षिप्त है। मनोविज्ञान का अतीत दर्शन से जुड़ा है। प्राचीन समय में मनोविज्ञान दर्शन शास्त्र की एक शाखा थी। जब हम इसके ऐतिहासिक विकास पर विचार करते है तो ज्ञात होता है कि मनोविज्ञान का इतिहास उतना ही पुराना है जितना मानवजाति का इतिहास, इसका प्रमाण यह है कि मनोविज्ञान का अध्ययन 600 ईसा पूर्व में प्रारम्भ हुआ था। यह 19वीं शताब्दी तक यह दर्शन शास्त्र के गर्भ में एक शिशु की भांति पलता रहा। इस दृष्टि से मनोविज्ञान एक प्राचीन विज्ञान है और आधुनिक मनोविज्ञान का इतिहास उतना प्राचीन नहीं है। दार्शनिक विचारों से सम्बन्धित तथ्यों और साक्ष्यों से स्पष्ट होता है कि भारतीय दर्शन का इतिहास अतिप्राचीन है और मनोविज्ञान की जिज्ञासा भारतीय चिंतन का एक प्रमुख विषय रहा है। किसी भी चिंतन को शैशव काल से प्रौढ़ होने में उतना ही समय लगता है जितना कि एक नन्हें से बालक को प्रौढ़ होने में लगता है। इसी क्रम में किसी भी विज्ञान के विकास में क्रमिक समय लगता है वही नियम मनोविज्ञान पर लागू होता है। जब से मनुष्य की उत्पत्ति हुई है तभी से वह अमूर्त रूप से चिंतन करने की क्षमता प्राप्त किए हुए है इसके विषय में कहा जाता है कि "खाली दिमाग शैतान का घर होता है" उसके समक्ष जो भी दिखाई दिया वह अपने आस पास की वस्तुओं के विषय में सम्पूर्ण जानकारी प्राप्त करने का प्रयास करने लगा।

परन्तु वह व्यावहारिक रूप से क्या? कैसे? कब? क्यों? जैसे प्रश्नों का उत्तर जानने का प्रयास १९वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में प्रारम्भ हुआ अर्थात् क्रमिक अध्ययन की प्रक्रिया 1879 में विल्हेम वुण्ट के प्रयोगशाला की स्थापना के समय प्रारम्भ हुआ।1879 को मनोविज्ञान के इतिहास में महत्वपूर्ण घटना के रूप में जाना जाता है इस वर्ष को मनोवैज्ञानिकों के द्वारा **रेड लेटर्ड डे** के रूप में वर्णित किया जाता है। उन्हीं के माध्यम से अनुभवपरक विधियों पर बल प्रदान किया जाता है। यहीं से अनुभवपरक विधियों का क्रमिक अध्ययन प्रारम्भ हुआ इसी बीच सम्प्रदायवाद का प्रारम्भ हुआ।

इसी का परिणाम है कि मनोविज्ञान पूर्ण रूप से विकसित एवं व्यवहार परक विज्ञान के रूप में स्थापित हुआ। आधुनिक मनोविज्ञान अपनी विशिष्टता की ओर अग्रसर है।

मनोविज्ञान की अनेक शाखाएँ और उपक्षेत्रों का आविर्भाव हुआ जो इस प्रकार है –

(1) सामान्यमनोविज्ञान (2)असमान्यमनोविज्ञान (3) मानवमनोविज्ञान (4) पशुमनोविज्ञान (5) बालमनोविज्ञान (6) किशोरमनोविज्ञान (7) प्रौढ़मनोविज्ञान (8) वृद्धावस्था का मनोविज्ञान (9) औद्योगिकमनोविज्ञान (10) नैदानिकमनोविज्ञान (11) परामर्शमनोविज्ञान (12) मनोजैवविज्ञान (13) व्यक्तित्वमनोविज्ञान (14) सैन्यमनोविज्ञान (15) प्रायोगिकमनोविज्ञान (16) मनोमितिकमनोविज्ञान (17) पर्यावरणीयमनोविज्ञान (18) स्वास्थ्यमनोविज्ञान (19) न्यायिकमनोविज्ञान (20) खेलकूदमनोविज्ञान (21) राजनीतिकमनोविज्ञान (22) शैक्षिकमनोविज्ञान

हम वर्तमान में जिस मनोविज्ञान को देखते है वह लगभग दो सौ वर्ष प्राचीन है। इसके विषय में कहा गया है की यह समस्त विज्ञानों में नवीन हैं। इस विज्ञान का जब तक दर्शन के साथ अध्ययन होता रहा तब तक इसका संपूर्ण विकास नहीं हुआ था,परन्तु जब इसका एक स्वतन्त्र विज्ञान के रूप में अध्ययन हुआ तो इसमें अनेक शाखाओं का अभ्युदय हुआ और इसमें मन का वैज्ञानिक अध्ययन होने लगा। मन के वैज्ञानिक अध्ययन के दो परिणाम हुए प्रथम- मन की शक्तियों का अधिक ज्ञान हुआ, जिसके परिणाम स्वरूप व्यावहारिक जीवन में मनोविज्ञान की मौलिकता बढ़ गयी और द्वितीय- मन को जगत के एक पदार्थ के रूप में स्वीकार लिया गया और उसकी क्रियाओं का उसी रूप में अध्ययन होने लगा।

जिस प्रकार जड़ पदार्थ या किसी प्राणी के क्रियाओं का अध्ययन किया जाता है, उसी प्रकार वैज्ञानिक अध्ययन में मन की समस्त क्रियाओं का अध्ययन किया जाता है परन्तु इस अध्ययन में मन की समस्त क्रियाओं को कार्य कारण भाव के अंतर्गत माना गया है। विज्ञान चेतनसत्ता व स्वतंत्र इच्छाशक्ति के अस्तित्व को स्वीकार नहीं करता, इस प्रकार मन के व्यापार को उसी रूप में स्वीकार किया जाता है जिस प्रकार जड़ पदार्थ के व्यापार को स्वीकार करते हैं।

मन के स्वरूप के विषय में किसी प्रकार का मनोवैज्ञानिक विचार एक मत नहीं हैं। सभी प्रतिष्ठित मनोवैज्ञानिक मन के स्वरूप में अपना नया मत व्यक्त करते रहते है, इस प्रकार नये मनोविज्ञान का विकास होता गया। सभी मनोवैज्ञानिक अपने मत को सही और दुसरे के मत को त्रुटियुक्त मानकर किसी न किसी प्रकार उसमें कमियाँ दिखाने का प्रयास करते है। इस प्रकार मनोविज्ञान में इतने मत हो गये की यदि उन्हें एक साथ रखा जाये तो एक विशाल ग्रन्थ का निर्माण हो सकता हैं, और यदि देखा जाये तो प्रत्येक वर्ष किसी न किसी मनोवैज्ञानिक का ग्रन्थ आता है और वह नये रूप में मन का स्वरूप बताने का प्रयास करता है।

आधुनिक मनोविज्ञान में मन को एक सामान्य पदार्थ के रूप में स्वीकार कर लिया गया है अथवा उसे कोई विलक्षण वस्तु माना गया है। अनेक मनोवैज्ञानिक मन अथवा चेतना को जड़ पदार्थ का एक विशेष प्रकार या रूप मानते है। उनका कहना है कि जिस प्रकार आमाशय से पाच्य रस की उत्पति होती है उसी प्रकार मस्तिष्क से चेतना की उत्पत्ति होती है तथा चेतना का उदय शरीर की वृद्धि के साथ होता है और उसका नाश शरीर के साथ होता है। चेतना शारीरिक क्रिया को भली भांति चलाने के लिए उत्पन्न होती है, और इसी चेतना से शारीरिक आवश्यकता की पूर्ति होती है। तथा जिस प्रकार किसी कार्य को करने में मनुष्य को सुख की अनुभूति होती है तो वह उस कार्य को बार-बार करने की कोशिश करता है तथा जिस कार्य को करने में उसे दुःख की अनुभूति होती है तो वह उस कार्य को नहीं करना चाहता इस मत के प्रवर्तक व्यवहारवादी मनोवैज्ञानिक है।

प्राचीन एवं मध्य युगीन पाश्चात्य चिंतन जहाँ धार्मिक प्रवृत्तियों से प्रभावित रहा, वहीं आधुनिक पाश्चात्य दर्शन का प्रारम्भ आधुनिक काल की प्रवृत्तियों के बीच हुआ। इस समय के दार्शनिक रेने देकार्टे सर्वोपरि रहे। उन्हें आधुनिक दर्शन का ही नहीं अपितु आधुनिक प्रणाली का भी पिता कहा जाता है देकार्टे के अनुसार मनुष्य का मन अथवा आत्मा शरीर से पूर्णत: भिन्न है। मन स्वतंत्र अभौतिक एवं विचारशील वस्तु है। मन का अस्तित्व स्वयं सिद्ध है। इस संदर्भ में देकार्टे की उक्ति प्रसिद्ध है कि मैं सोचता हूँ ,अत: मैं हूँ। इसी तरह स्पिनोजा के मत में शरीर और मन दोनों आपस

में समानांतर है व इनमें कार्य कारण का सम्बन्ध नहीं है। इस तरह मन केवल चेतना नहीं है ,बल्कि यह आत्मचेतना भी है , जिसे स्पिनोजा ने शरीर का प्रत्यय कहा है।

अनुभववाद को मानने वाले दार्शनिक जान लॉक के अनुसार मनुष्य का मन प्रारम्भ में कोरे कागज की भांति होता है, जिसमें कोई चिह्न या प्रत्यय नहीं होता है, परन्तु अनुभव होने पर ही इसमें विचार या ज्ञान का उद्भव होता है। अनुभवी ज्ञान दो तरह का होता है –

संवेदना द्वारा इन्द्रिय गुणों का ज्ञान होता है।

चिंतन द्वारा प्रत्यक्ष, संवेग, विश्वास, विचार, तर्क, संकल्प जैसी मन की क्रियाएँ होती है। डेविड ह्यूम के अनुसार मन या आत्मा नित्य या शाश्वत नहीं है, अत: ह्यूम के अनुसार मन उन विभिन्न संवेदनाओं के युग्म के अतिरिक्त कुछ नहीं है जो कि अचिंतनीय तीव्रता के साथ आते हैं। इस तरह मन या आत्मा मानसिक क्रियाओं का समूह है।

व्यवहारवादियों का विरोध चेतनावादी करते हैं। तथा कहते है कि मन चेतन रूप है और मनोविज्ञान के अध्ययन का विषय व्यवहार नहीं बल्कि मनुष्य की चेतना है। चेतना को मस्तिष्क का विकार नहीं माना जाता यह एक विशेष प्रकार का तत्त्व है। चेतनावादी शरीर के अस्तित्व को स्वीकार करते है, और यह भी मानते है कि मनुष्य का शारीरिक और मानसिक क्रियाओं से घनिष्ठ सम्बन्ध है, किन्तु यहाँ प्रश्न होता है कि यह सम्बन्ध कैसा है? और वह कहाँ होता है? इसके विषय में कोई निश्चित मत नहीं है। अधिकांश विद्वानों के अनुसार चेतना मस्तिष्क में नहीं रहती है और अधिकांश विद्वान् के अनुसार मन सम्पूर्ण शरीर में विद्यमान रहता है कुछ विद्वान् मन और शरीर को दो न मानकर एक वस्तु मानते है जब हम एक बार चेतना को शरीर से पृथक कोई वस्तु मान लेते है तो उसमें किसी प्रकार का संयोग होना असंभव हो जाता है।

चेतनावादी और व्यवहारवादी मन के उस भाग का अध्ययन करते है जो हमें अपनी जाग्रत अवस्था में प्राप्त होता है। व्यवहारवादी अधिकतर शारीरिक क्रियाओं में प्रकाशित होने वाले मन के व्यापारों का अध्ययन करते है, और चेतनावादी चेतन मन में होने वाली समस्त क्रियाओं का अध्ययन

करते है। परन्तु विद्वानों का मानना है कि व्यवहारवादियों का अध्ययन चेतनावादियों की अपेक्षा कहीं अधिक वैज्ञानिक प्रतित होता है, किन्तु वे अन्त: स्वभाव के विषय में अधिक चिंतन नहीं करते है। व्यवहारवादियों में मनोवैज्ञानिक प्रयोगों का बाहुल्य पाया जाता है। चेतनावादी अंतरदर्शन की विधि के द्वारा पाए प्रदत्तों पर ही अपने अधिकांश सिद्धांत स्थापित करते हैं। चेतनावादी मन को समस्त क्रियाओं में ज्ञानात्मक भावात्मक और क्रियात्मक विभागों में विभक्त करते है और इस प्रकार वे मन की विभिन्न क्रियाओं का अध्ययन करते है।

आधुनिक मनोविज्ञान के विद्वानों के आविष्कार

आधुनिक मनोविज्ञान की प्रयोगशाला और उनसे सम्बन्धित पुरस्कार उसका विवरण निम्न है –

1879 विलहम वुण्ट ने लिपजिंग, जर्मनी में प्रथम मनोविज्ञान की प्रयोगशाला को स्थापित किया।

1890 में विलियम जेम्स ने 'प्रिंसिपल ऑफ साइकोलॉजी' प्रकाशित की।

1895 में मनोविज्ञान की एक व्यवस्था के रूप में प्रकार्यवाद की स्थापना।

1900 में सिगमंड फ्रायड ने मनोविश्लेषणवाद का विकास किया।

1904 में इवान पावलव को पाचन व्यवस्था के कार्य के लिए नोबल पुरस्कार लिए मिला जिससे अनुक्रियाओं के विकास के सिद्धांत को समझा जा सका।

1905 में बीने एवं साइमन द्वारा बुद्धि परीक्षण का विकास।

1916 में कलकत्ता विश्वविद्यालय में मनोविज्ञान का प्रथम विभाग खुला।

1920 में जर्मनी में गेस्टाल्ट मनोविज्ञान का उदय हुआ।

1922 में मनोविज्ञान को इण्डियन साइंस कांग्रेस एसोसिएशन में सम्मिलित किया गया।

1924 में भारतीय मनोवैज्ञानिक एसोसिएशन की स्थापना हुई।

1924 में जॉन बी. वाट्सन ने व्यवहारवाद नामक पुस्तक लिखी जिससे व्यवहारवाद की नींव पड़ी।

1928 में एन.एन. सेनगुप्ता एवं राधाकमल मुखर्जी ने सामाजिक मनोविज्ञान की प्रथम पुस्तक लिखी (लंदन : एलन और अनविन)।

1949 में 'डिफेंस साइंस आर्गेनाइजेशन ऑफ इंडिया' में मनोवैज्ञानिक शोध खण्ड की स्थापना।

1951 में मानववादी मनोवैज्ञानिक कार्ल रोजर्स ने रोगी-केंद्रित चिकित्सा प्रकाशित की।

1953 में बी.एफ. स्किनर ने 'साइंस एंड ह्यूमन बिहेविअर' प्रकाशित की जिससे व्यवहारवाद को मनोविज्ञान के एक प्रमुख उपागम के रूप में बढ़ावा मिला।

1954 में मानववादी मनोवैज्ञानिक अब्राहम मैस्लो ने 'मोटिवेशन एंड पर्सनॉलटी' प्रकाशित की।

1954 में इलाहाबाद में मनोविज्ञानप्रयोगशाला की स्थापना।

1955 में बंगलौर में नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ मेंटल हेल्थ एंड न्यूरोसाइंसेस की स्थापना।

1962 में रांची में 'हॉस्पिटल फॉर मेंटल डिशीशिजन' की स्थापना।

1973 में कोनराड लारेंश तथा निको टिनबर्गेन को उनके कार्य पशु-व्यवहार की उपजाति विशिष्टता की अंतर्निर्मित शैली जो बिना किसी पूर्व अनुभव अथवा अधिगम के होती है, पर नोबल पुरस्कार मिला।

1978 में निर्णयन पर किए गए कार्य के लिए हर्बर्ट साइमन को नोबल पुरस्कार प्राप्त।

1981 में डेविड ह्यूबल एवं टार्स्टेन वीसल को मस्तिष्क की दृष्टि कोशिकाओं पर शोध के लिए नोबल पुरस्कार प्राप्त।

1981 में रोजर स्पेरी को मस्तिष्क विच्छेद अनुसंधान के लिए नोबल पुरस्कार प्राप्त।

1989 में नेशनल अकेडमी ऑफ साइकोलॉजी इंडिया की स्थापना।

1997 में गुड़गाँव, हरियाणा में नेशनल ब्रेन रिसर्च सेंटर की स्थापना।

2002 में अनिश्चितता में मानव निर्णयन के अनुसंधान पर डेनियल को नोबल पुरस्कार मिला।

आधुनिक मनोविज्ञान के कुछ सिध्दांत व उनके प्रतिपादक इस प्रकार है

क्र.	सिद्धान्त	प्रतिपादक/जनक
1.	आधुनिक मनोविज्ञान के जनक	विलियम जेम्स
2.	प्रकार्यवाद सम्प्रदाय के जनक	विलियम जेम्स
3.	आत्म सम्प्रत्यय की अवधारणा	विलियम जेम्स
4.	शिक्षा-मनोविज्ञान के जनक	एडवर्ड थार्नडाइक
5.	संबंधवाद का सिद्धांत	थार्नडाइक
6.	युग्म तुलनात्मक निर्णय विधि के प्रतिपादक	थर्स्टन
7.	संरचनावाद सम्प्रदाय के जनक	विल्हेल्म मैक्सिमिलन वुन्ट और शिष्य टिचनर (Edward B. Titchener)
8.	प्रयोगात्मक मनोविज्ञान के जनक	विल्हेम वुण्ट-1879 में लिंपजिग जर्मनी में पहली प्रयोगशाला
9.	विकासात्मक मनोविज्ञान के प्रतिपादक	जीन पियाजे
10.	संज्ञानात्मक विकास का सिद्धांत	जीन पियाजे
11.	मूल प्रवृत्तियों के सिद्धांत के जन्मदाता	विलियम मैक्डूगल
12.	मनोविज्ञान – मन मस्तिष्क का विज्ञान	पोंपोनोजी
13.	व्यवस्थित व्यवहार का सिद्धांत	सी. एल. हल
14.	सामीप्य संबंधवाद का सिद्धांत	गुथरी

15	भाषायीसापेक्षता प्राक्कल्पना के प्रतिपादक	व्हार्फ
16	मनोविज्ञान के व्यवहारवादी सम्प्रदाय के जनक	जोहन बी. वाटसन
17	अधिगम या व्यवहार सिद्धांत के प्रतिपादक	क्लार्क हल
18	सामाजिक अधिगम सिद्धांत के प्रतिपादक	अल्बर्ट बण्डूरा
19	मनोसामाजिक विकास का सिद्धांत	एरिकएरिक्सन
20	आधुनिक मनोविज्ञान के प्रथम मनोवैज्ञानिक	डेकार्टे
21	संबंधवाद (1913)	थार्नडाईक
22	शक्ति मनोविज्ञान का जनक	वॉल्फ
23	आत्मज्ञान का सिद्धांत	मैस्लो (मास्लो)
24	मनोविश्लेषण विधि के जन्मदाता	सिगमंड फ्रायड
25	स्वप्न विश्लेषण विधि के प्रतिपादक	सिगमंड फ्रायड
26	मनोविज्ञान के व्यवहारवादी सम्प्रदाय के जनक	जोहन बी. वाटसन
27	अधिगम मनोविज्ञान का जनक	एविग हास

आधुनिक मनोविज्ञान में फ्रायड की उपयोगिता

फ्रायड महोदय साधारण रूप से एक डाक्टर थे। उन्हें कई ऐसे रोगी मिले, जिनके रोगों का कारण शारीरिक नहीं बल्कि मानसिक था। मनुष्य की भावनाएँ उसके शरीर पर इतना प्रभाव डाल सकती हैं कि जिससे शारीरिक रोग की उत्पत्ति हो जाये। इस प्रकार की कल्पना पूर्व से ही चली आ रही हैं। किन्तु इसका वैज्ञानिक अध्ययन नहीं किया गया था। फ्रायड महोदय ने वैज्ञानिक ढंग से मन के अंतः पटल का अध्ययन करके रोग के मानसिक कारण के महत्व पर प्रकाश डाला, उनके कथन के अनुसार हम मन को जितना जानते हैं, वह संपूर्ण मन का एक अल्प भाग है और उन्होंने संपूर्ण मन को एक बर्फ के समुद्र पर तैरते हुए पर्वत के समान माना है। उस हिम खण्ड का छोटा सा टुकड़ा जिस प्रकार पानी के सतह पर तैरता रहता है। वह तैरने वाला चेतन मन है और पानी की सतह के नीचे रहने वाला भाग मनुष्य का अचेतन मन है। मनुष्य की क्रियाओं का मूल स्रोत उसके अचेतन मन में रहता है, तथा उसके रोगों का कारण भी उसके अचेतन मन ही है। मनुष्य के अचेतन मन को समझे बिना उसे मानसिक रोगों से मुक्त नहीं किया जा सकता। मनुष्य के अचेतन मन को समझने के लिए उसके स्वप्न, भूल, आकस्मिक तथा उसकी विक्षिप्तता और सम्मोहित अवस्थाओं की क्रियाओं को जानना आवश्यक है। फ्रायड महाशय ने इसका अध्ययन करके अचेतन संबंधी ज्ञान को बढ़ाया है।

मनुष्य का मन अनेक ऐसी बातें करता है, जिनका मनुष्य के चेतन मन को कुछ भी ज्ञात नहीं रहता है। मनुष्य प्रतिदिन दिवास्वप्न देखता है, किंतु स्वप्न के विषय में हमारे मनोविज्ञान के ग्रन्थों में अल्पमात्रा में उल्लेख किया गया है। मन के स्वरूप को समझने के लिए स्वप्नावस्था की क्रियाओं का अध्ययन उतना ही आवश्यक है जितना कि जागृत अवस्था की क्रियाओं का है। इसी प्रकार अन्य मनोवैज्ञानिक भी मन को अनेक प्रकार की क्रियाओं का कारण बताते हैं, इन सब कारणों में सामंजस्य स्थापित करने और समझाने का प्रयास किसी भी मनोवैज्ञानिक के माध्यम से नहीं किया गया है उदाहरण के लिए मेक्डुगल महोदय ने मानसिक क्रियाओं के मूल स्रोत की अनेक मूल प्रवृत्तियां बताई हैं। क्या इन मूल प्रवृत्तियों में किसी प्रकार का सामंजस्य स्थापित नहीं किया जा सकता? और

क्या उनका स्रोत किसी एक ही प्रवृत्ति में नहीं ढूंढा जा सकता है? जिसे फ्रायड ने खोजने का प्रयास किया इस दृष्टि से उनका प्रयास अति महत्त्वपूर्ण है।

फ्रायड ने सभी प्रकार की मूल प्रवृत्तियों का समावेश एक ही प्रवृत्ति में किया है और वह प्रवृत्ति काम प्रवृत्ति है जिसमें सभी प्राणी बाह्य सुख की इच्छा से प्रेरित होकर सभी प्रकार के कार्य करते हैं। बाह्य सुखों में सबसे अधिक काम वासना की तृप्ति का सुख है। फ्रायड के अनुसार जब भी किन्ही दो व्यक्तियों में स्वाभाविक प्रेम देखा जाता है तो उस प्रेम के पीछे कामवासना हैं। प्रेम कामवासना का आवरण मात्र रहता है माता और पुत्र, पिता-पुत्री और मित्रों और बंधुओं में या भाई-बहन में जो प्रेम देखा जाता है, उसका मूल आधार कामवासना है, इस बात को प्रमाणित करने के लिए वे मनुष्य तथा अन्य प्राणियों के व्यवहारों की ओर हमारे ध्यान को आकृष्ट करते हैं। सही और गलत का विचार मानव-समाज में ही पाया जाता है। फिर भी मनुष्य समाज में भी इसी प्रकार के काम संबंध को अनुचित समझा जाता है और अन्य जगह उसी प्रकार के संबंध को उचित समझा जाता है।

मनुष्य का मन बहुमुखी है, अर्थात् वह सभी प्रकार के सुखों को भोगना चाहता है और सभी प्रकार के सम्बन्धों से उसका कार्य सम्पन्न हो सकता है। समाज इस प्रकार के मनुष्य को स्वतंत्रता नहीं देता, इस प्रकार एक नैतिक प्रतिबंध बनाए गए हैं। जो समाज के भय के कारण मनुष्य अपनी वासनाओं का दमन करता है। जिस प्रकार मनुष्य का मन अत्यंत कामी है,उसी प्रकार वह अत्यन्त स्वार्थी भी है। उस स्वार्थी मनीषी को समाज नियंत्रित करता है। जैसे-जैसे वह समाज के संपर्क में आता है उसी गति से वह नियंत्रित होता जाता हैं।

फ्रायड महाशय का एक मौलिक सिद्धांत है कि मनुष्य जन्म से ही अत्यंत स्वार्थी होता है, और वह भय के कारण परोपकारी बनता है। उसका अचेतन मन स्वार्थी और भोग की इच्छाओं से भरा पड़ा है। मनुष्य का आन्तरिक मन इतना मलिन और क्रूर है कि वह उसे स्वीकार ही नहीं कर सकता उसमें जो भी परोकार हम देखते हैं वह उसके स्वभाव से उत्पन्न नहीं होते वह समाज के भय से

उत्पन्न होता हैं अर्थात् मनुष्य के मन में सभी सद्विचार बाह्य जगत् से आते हैं यह सद्विचार मनुष्य के मलिन और स्वार्थी स्वभावादि की बातें छिपाने का कार्य करते है।

फ्रायड ने मनुष्य के आंतरिक मन का जो चित्र बनाया, इसके कारण संसार के विद्वान् मनोविज्ञान के अध्ययन से ही विमुख हो गए। यदि मन के आंतरिक पटल के अध्ययन से मनुष्य अपने तथा दूसरों के स्वभाव के विषय में अल्पधारणा बनाए तो वह इस प्रकार के अध्ययन को क्यों करें। लेखक के बहुत से मित्र मनोविश्लेषण विज्ञान अध्ययन इसलिए नहीं करते कि उसके कारण मनुष्य मात्र के प्रति मनुष्य अपना एक ऐसा दृष्टिकोण बना लेता है, जिससे वह किसी व्यक्ति में कोई मौलिक चिंतन नहीं देखता। नवयुवक इस प्रकार के ज्ञान से नैतिकता के प्रति उदासीन हो जाते हैं। वे किसी प्रकार की भोग इच्छा को अनुचित नहीं समझते। नैतिकता जब समाज द्वारा उस पर थोपी जाती है तो एक धारणा मात्र है और उसी धारणा से समाज का भय है तो मनुष्य उसे क्यों न माने निर्भीकता में ही तो मनुष्य का मनुष्यत्व और पुरुषार्थ है।

फ्राइड के अनुयायी अलफ्रेड एडलर और चार्ल्स युंग हुए। जिन्होंने फ्रायड के सिद्धांतों का अनेक प्रकार से विरोध किया। एडलर ने फ्रायड के मन के स्वरूप संबंधी मूल सिद्धांत को स्वीकार किया, किन्तु मनुष्य की मूल काम-वासना न मानकर मान-प्रतिष्ठा को ही वासना माना है। मानसिक रोगी इसी वासना के दमन से उत्पन्न होते हैं। फ्रायड के समान एडलर भी मन को स्वार्थी मानते है।

दोनों ही विद्वान् जड़वादी हैं और उनका मानना है कि मन का निर्माण शरीर के साथ होता है और शरीर के नष्ट हो जाने पर वह भी नष्ट हो जाता है। इस जड़वाद के मौलिक सिद्धांत के प्रतिकूल वे नहीं गये। अचेतन मन की उत्पत्ति बालक में जन्म से होती हैं और छोटी अवस्था में व्यक्ति के चेतन और अचेतन मन में वैषम्य में नहीं रहता, तथा समाज के संपर्क में आने पर वह विषमता उत्पन्न होती हैं क्योंकि समाज से मनुष्य नैतिक भावनाओं को ग्रहण करता है।

आधुनिक मनोविज्ञान की खोज डॉ. फ्रायड के उपर्युक्त खोजों के आगे भी की गई हैं। उनके शिष्य डॉ. युंग ने बताया कि मनुष्य के सुस्वत्व की जड़ केवल उसके व्यक्तिगत अनुभव में नहीं है,

वरन् यह सम्पूर्ण मानव समाज के अनुभव में है । इसी कारण जब मनुष्य समाज की मान्यताओं के प्रतिकूल आचरण करता है तो उसके भीतरी मन में अकारण ही दण्ड का भय उत्पन्न हो जाता है । यह भय तब तक नहीं जाता जब तक मनुष्य अपनी नैतिकता सम्बन्धी भूल स्वीकार नहीं कर लेता और उसका प्रायश्चित नहीं कर डालता। इस तरह की आत्मस्वीकृति और प्रायश्चित से मनुष्य के भोगवादी स्वत्व और सुस्वत्व अर्थात् समाजहितकारी उपस्थित स्वत्व में एकता स्थापित हो जाती है । मनुष्य को मानसिक शांति न तो भोगवादी स्वत्व की अवहेलना से मिलती है और न सुस्वत्व की अवहेलना से है, दोनों के समन्वय से ही मानसिक स्वास्थ्य और प्रसन्नता का अनुभव होता है ।

इंग्लैंड के एक प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक डॉ. विलियम ब्राउन मन के उपर्युक्त सभी स्तरों के परे मनुष्य के व्यक्तित्व में उपस्थित एक ऐसी सत्ता को भी बताते हैं, जो देश और काल की सीमा के परे है, इसकी अनुभूति मनुष्य को मानसिक और शारीरिक शिथिलीकरण की अवस्था में होती है । उनका कथन है कि जब मनुष्य अपने सभी प्रकार के चिंतन को समाप्त कर देता है और जब वह इस प्रकार शांत अवस्था में पड़ जाता है, तब वह अपने ही भीतर उपस्थित एक ऐसी सत्ता से एकत्व स्थापित कर लेता है जो अपार शक्ति का केंद्र है और जिससे थोड़े समय के लिए भी एकत्व स्थापित करने पर अनेक प्रकार के शारीरिक और मानसिक रोग शांत हो जाते हैं । इससे एकत्व स्थापित करने के बाद मनुष्य के विचार एक नया मोड़ ले लेते हैं । फिर ये विचार रोगमूलक न होकर स्वास्थ्यमूलक हो जाते हैं ।

आधुनिक मनोविज्ञान अब भगवान् बुद्ध और महर्षि पतंजलि की खोजों की ओर जा रहा है । मन के उपर्युक्त तीन भागों के परे एक ऐसी स्थिति भी है जिसे एक ओर शून्य रूप और दूसरी ओर अनन्त ज्ञानमय कहा जा सकता है । इस अवस्था में द्रष्टा और दृश्य एक हो जाते हैं और त्रिपुटी जन्य ज्ञान की समाप्ति हो जाती है ।

-------------------------------****************--------------------------------

द्वितीय अध्याय

वेद में मनोविज्ञान तथा विश्लेषण

2.1 ऋग्वेदीय वाङ्मय में मनस तत्व का विश्लेषण

2.2 औपनिषदिक मनस् तत्व

द्वितीय अध्याय
वेद में मनोविज्ञान तथा विश्लेषण

2.1 ऋग्वेदीय वाङ्मय में मनस् तत्व का विश्लेषण

वेद भारत वर्ष ही नहीं समस्त विश्व का सर्व प्राचीन ग्रन्थ है। ऋग्वेद में मनोविज्ञान के अनेक प्रमाण प्राप्त होता है। ऋग्वेद में पुरुष और आत्मा के रूप में विस्तृत वर्णन किया गया है। ऋग्वेद के पुरुष सूक्त में अनंत शक्ति के पुंज सर्वत्र व्याप्त पुरुष का वर्णन प्राप्त होता है। जिसके द्वारा इस विश्व का निर्माण किया गया। जो काल और परिस्थिति के अनुसार भिन्न भिन्न रूप में प्राप्त होता है। अर्थात् व्यक्ति अपने पर्यावरण से जुड़ा है इस लिए वह सृष्टि से सामंजस्य बिठाकर अपने जीवन को व्यतीत करता है। गेस्टाल्ट मनोविज्ञान के अनुसार जब मनुष्य अपने व्यवहार में सामंजस्य और एकीकरण स्थापित करता है तभी उसमें अभेद का भाव मुख्य होता है।

इस संसार में जब से मानव की सत्ता स्वीकार की जाती है तो उस क्रियाकलाप का मूल मन ही रहा है। जो मानव समस्त बाह्य चेष्टा को प्रेरित करने वाला शक्ति मन को माना जाता है। यह मानव जाग्रत, स्वप्न, सुसुप्ति और तुरीय अवस्था का मूल मन ही है। मानव जीवन में मन का अपना विशिष्ट स्थान है क्योंकि आत्मा मन का करण है, उसी के साहचर्य से आत्मा धर्म अधर्म कार्यों में प्रवृत्त होता है मन ही व्यक्ति का वह अन्तरंग साधन है जिससे वह सोचता और समझता है, तर्क–वितर्क, संकल्प, तथा विविध वस्तुओं को अनुभव प्राप्त करता है बौद्धिक अनुभव के अतिरिक्त मनुष्य मन में प्रेम, क्रोध, लोभ मोह, ईर्ष्या, द्वेष आदि संवेगों का अनुभव मन के माध्यम होता है।

मन की विशेषताएँ

मन की अनन्त विशेषताएँ हैं। संसार के समस्त विषय मन के कार्यक्षेत्र में समाहित हैं। मन को सहस्र किरण या असंख्यशक्ति कहा जाए तो अत्युक्ति नहीं है। मन द्यावापृथिवी, लोक-परलोक, वर्तमान, भूत और भविष्य सभी को अपनी परिधि में रखता है। ऋग्वेद में मन की अनन्त शक्तियों का उल्लेख है।

मन की गति बहुमुखी है। हे तेजस्वी इन्द्र ! युद्ध के समय तुम्हारा वज्र हमारी रक्षा करे। तुम्हारा मन इधर-उधर न जावे।

आ ते मह इन्द्रोत्युग्र समन्यवो यत्सरन्त सेनाः।

पताति दिद्युन्नस्य ब्रह्वोर्मा ते मनोविश्वद्रयग्वी चारित्॥[76]

मन की बहुमुखीवृत्ति कभी लाभप्रद हो सकती है, परन्तु विशेष प्रयोजन या लक्ष्य में एकाग्रता अनिवार्य है। मन हृदय का निर्देशक है। मन हृदय को आदेश करता है। हर्ष, शोक, चिन्ता, क्षोभ आदि की स्थिति में हृदय को क्या करना चाहिए, इसका निर्देशन मन करता है। हर्ष, शोकादि की स्थिति में हृदय में संवेदना की अनुभूति होती है। सहानुभूति, संवेदना, ममता, अनुराग, विषाद आदि का सम्बन्ध हृदय से है।

मन अक्षय ज्ञान का कोष है। सर्वव्यापक परमात्मा वेद-त्रयी रूपी वाणी को मन से धारण करता है।

पतंगो वाचं मनसा बिभर्ति तां गन्धर्वोऽवदद्गर्भे अन्तः।

तां द्योतमानां स्वर्यं मनीषामृतस्य पदे कवयो निपान्ति॥[77]

मन ज्ञान और शक्ति का उत्स है। विश्व में जो कुछ भी मनन और चिन्तन हुआ है, हो रहा है और होगा, वह सभी कुछ मन के अन्तर्गत है। अतः ज्ञानराशि वेद भी मन में अधिष्ठित है। मन का कार्य क्षेत्र व्यापक है।

---

76 ऋग्वेद 7/1/25

77 ऋग्वेद 10/177/2

भद्रं वै वरं वृणते भद्रं युञ्जन्ति दक्षिणम् ।
भद्रं वैवस्वते चक्षुर्बहुत्रा जीवतो मनः ॥[78]

मनुष्य का मन अनेक प्रकार का है। वह कभी बुराई की ओर जाता है, कभी अच्छाई की ओर निष्पाप मन से अभीष्ट सिद्धि होती है।

चित्तनदी नामोभयतवाहिनी वहति कल्याणाय वहति पापाय च ।[79]

अभीष्ट सिद्धि के लिए परमावश्यक है मनुष्य के संकल्प या विचार की शुद्धि। कार्य की सफलता मन की आकांक्षाओं की पूर्ति, विचारों की पूर्णता के लिए आवश्यक है कि मनुष्य पाप में प्रवृत्त न हो। शुद्ध हृदय से बुद्धि परिष्कृत होती है।

अहं तष्टेव वन्धुरं पर्यचामि हृदा मतिम् ।

कुवित्सोमस्यापामिति ॥[80]

जैसा मनुष्य का हृदय होता है, उसी प्रकार उसकी बुद्धि होती है। विचारों और भावनाओं की शुद्धि बुद्धि के परिष्कार का साधन है।

मन संजीवनी शक्ति है। चेतना और प्रेरणा का मूल मन है। मन की शक्तियों का वर्णन करते हुए कहा गया है कि मनोबल से मृत्यु को वश में किया जा सकता है। मरणासन्न को मृत्यु से बचाया जा सकता है जिस प्रकार मोटी रस्सी से जुए को कसा जाता है, उसी प्रकार मन के द्वारा मृत्यु को भी कसकर वश में लाया जा सकता है।

यथा युगं वरत्रया नह्यन्ति धरुणाय कम् ।
एवा दाधार ते मनो जीवातवे न मृत्यवेऽथो अरिष्टतातये ॥[81]

एक मन्त्र के भावार्थ में उल्लेख है- मैं विवस्वान के पुत्र यम से अपने प्रिय मित्र के मन को जीवित रहने के लिए न कि मृत्यु के लिए और कुशलता के लिए लौटाकर लाया हूँ।

यमादहं वैवस्वतात्सुबन्धोर्मन आभरम् ।

---

78 ऋग्वेद 10/164/2

79 योगदर्शन व्यास भाष्य 1/12

80 ऋग्वेद 10/119/5

81 ऋग्वेद 10/60/8

जीवातवे न मृत्यवेऽथो अरिष्टतातये ॥[82]

अनेक मन्त्रों में मनोबल या इच्छा शक्ति का महत्त्वपूर्ण वर्णन किया गया है। मनोबल वह शक्ति है, जिसे कोई स्थिर नहीं सकता है। यह अधर्षणीय है। मनोबल पहाड़ से भी अधिक शक्तिशाली होता है। दृढ़निश्चय को पर्वत भी नहीं रोक सकते।

अहमिन्द्रो न परा जिग्य इद्धनं न मृत्यवेऽव तस्थे कदा चन।
सोममिन्मा सुन्वन्तो याचता वसु न मे पूरवः सख्ये रिषाथन ॥[83]

मनोबल का यह महत्त्व है कि मनुष्य जीवन में कभी पराजय होना नहीं जानता। सदा विजय लाभ करता है। वह मृत्यु से भी हार नहीं मानता। वह मृत्यु को वश में करता है। मनोबल का उपयोग जनहित या जनकल्याण के लिए भी होता है। जनहितकारी मन नाराशंस है।

मनो न्वा हुवामहे नाराशंसेन सोमेन।
पितॄणां च मन्मभिः ॥[84]

मनोबल एवं तीव्र संकल्प से मनुष्य जो कुछ चाहता है, वह उसे प्राप्त हो जाता है। उसके मनोरथ सिद्ध होते हैं। मन अभीष्ट सिद्धि में रथ का काम करता है और प्रार्थित वस्तु लाकर उपस्थित करता है, अतः उसे रथ की उपमा दी गई है। मनोबल से असम्भव कार्यों को भी सम्भव बनाया जा सकता है। मनोबल शक्ति का स्रोत है।

हन्ताहं पृथिवीमिमां नि दधानीह वेह वा।

कुवित्सोमस्यापामिति ॥[85]

मनोबल मनुष्य को अजेय बना देता है। सैंकड़ों शत्रु उसे परास्त नहीं कर सकते। वह शत्रुओं को खलिहान में धान की पूली की तरह रौंद देता है।

विचार शुद्धि से मनोबल प्राप्त होता है। सभी बलों में मनोबल श्रेष्ठ है। मनोबल से अजेयता की प्राप्ति होती है।

---

82 ऋग्वेद 10/10/60

83 ऋग्वेद 10/48/5

84 ऋग्वेद 10/57/3

85 ऋग्वेद 10/119/9

यो मा पाकेन मनसा चरन्तम् । भिचष्टे अनृत भिर्वचोभिः ।
आप इव काशिना संगृभिता असन्नस्त्वासत इन्द्र वक्ता ।।[86]

असत्य भाषण मनोबल को गिराता है । जहाँ शुभ विचार है, वहाँ देवों का निवास है । जहाँ अशुभ विचार है वहाँ देवों का अभाव है । सद् विचार देवकृपा है ।

पाकत्रा स्थन देवा हृत्सु जानीथ मर्त्यम् ।

उप द्वयुं चाद्वयुं च वसवः ॥[87]

सद् विचार से आत्मसाक्षात्कार होता है । परमात्मा की शक्ति से समन्वित जीवात्मा को विद्वान लोग हृदय और मन को सम्बन्धित करके देखते हैं ।

पतंगमक्तमसुरस्य मायया हृदा पश्यन्ति मनसा विपश्चितः ।
समुद्रे अन्तः कवयो वि चक्षते मरीचीनां पदमिच्छन्ति वेधसः ॥[88]

मन विचारों का केन्द्र है और हृदय अनुभूतियों का । दोनों के समन्वय से चेतना का शुद्ध रूप प्रस्फुटित होता है । मन और हृदय की सूक्ष्म गतिविधि को देखकर आत्मतत्त्व का वास्तविक रूप जाना जा सकता है । जो आस्तिक व्यक्ति दृढ़ संकल्पयुक्त मन एवं पूरे हृदय से इन्द्र के लिए सोमरस निकालता है, इन्द्र उसके लिए सुन्दर और हितकर ही कार्य करता है ।

य उशता मनसा सोममस्मै सर्वहृदा देवकामः सुनोति ।
न गा इन्द्रस्तस्य परा ददाति प्रशस्तमिच्चारुमस्मै कृणोति ।।[89]

इन्द्रियों की शक्ति में न्यूनता न आने देने का उपाय है- संकल्प की तीव्रता । तीव्र संकल्प क्षय का निरोध करता है और इष्ट की प्राप्ति करता है । यही मन की विशेषता है ।

स्त्रियों का मन -

वेदों में स्त्री और पुरुष के मध्य शरीर के अतिरिक्त कोई भेद नहीं है अतः पुरुष मन और स्त्रैण मन में बहुत समानता है किन्तु ऋग्वेद के एक मन्त्र में स्त्री के मन को 'अशास्य' बताया है ।

86 ऋग्वेद 7/104/8
87 ऋग्वेद 8/18/15
88 ऋग्वेद 10/177/1
89 ऋग्वेद 10/160/3

इन्द्रश्चिद्धा तदब्रवीत्स्त्रिया अशास्यं मनः ।
उतो अह क्रतुं रघुम् ॥[90]

स्त्री का मन अशास्य है। स्त्री का मन इतना कोमल है कि जब पुरुष उस पर शासन करता है तो वह मुरझाने लगती है। स्त्री का मन इतना सुकोमल है कि जब पुरुष उसके प्रति स्नेह, समादर और सौहार्द के साथ वर्तता है तो वह कली की तरह मुस्कुराती हुई फूल की तरह खिलने लगती है। स्त्री शासन नहीं चाहती स्नेह चाहती है। वह नहीं चाहती कि वह किसी पर शासन करे और वह यह भी नहीं चाहती कि कोई उस पर शासन करे क्योंकि स्वभाव से भी और प्रकृति से भी वह अशास्यमना है। स्त्री की रचना का प्रकार ऐसा है कि सम्पूर्ण सृष्टि की रचना से निवृत्त होकर, ब्रह्म ने ब्रह्माण्ड की ओर देखा। उसे लगा कि सृष्टि और स्रष्टा की सम्पूर्ण महिमा को खोजने वाला और सम्पूर्ण सृष्टि पर शासन करने वाला कोई प्राणी नही था। उसने मनुष्य की रचना की और उसे सृष्टि का अधिपति बनाया।

मनुष्य ने सम्पूर्ण सृष्टि पर अपना आधिपत्य जमा लिया। ब्रह्म ने देखा कि मनुष्य निरंकुश, अशान्त और उदास था। ब्रह्म ने स्त्री की रचना की और उसे जीवन संगिनी के रूप में मनुष्य को सौंप दिया। स्त्री के संदर्शन से मनुष्य शान्त और प्रहृष्ट हुआ। फिर मनुष्य ने स्त्री का स्पर्श किया तो वह मृदुता, मानवीयता और सौम्यता से ओतप्रोत हो गया। तब से स्त्री विहिन मनुष्य मानव समाज में अप्रतिष्ठित रहता है और स्त्री सहित मनुष्य प्रतिष्ठा प्राप्त करता है। स्त्री पूजनीय है। मानव सृष्टि की रचयित्री, जीवन निर्मात्री एवं संचालयित्री स्त्री होती है।

अधःपश्यस्व मोपरि संतरां पाद्कौ हर ।
मा ते कशप्ल कौ दृशंस्त्री हि ब्रह्मा बभूविथ ॥[91]

स्त्री सृष्टि यज्ञ की ब्रह्मा है। रचयिता के योग्यतानुसार ही रचना होती है। अतः स्त्री का मन सदैव ब्राह्मगुणों से युक्त होना चाहिए। स्त्रियों के मन की विशेषता यह है कि बलवान पुरुष का मन भी स्त्री में रत होता है।

---

90 ऋग्वेद 8/33/17

91 ऋग्वेद 8/33/19

यथा पुंसो वृषण्यत स्त्रियां निहन्यते मनः।[92]

पुरुष का मन प्रकृत्या स्त्री में बद्ध होता है।

मक्षू देववतो रथः शूरो वा प्रित्सु कासु चित।
देवानां य इन्मनो यजमान इय क्षत्य भीद यज्वनो भुवत्।।[93]

स्त्री मन से, मनोनेत्र से पुरुष को देख व समझ लेती है-

अपश्यं त्वा मनसा चेकितानं तपसो जातं तपसो विभूतम्।
इह प्रजामिह रयिं रराणः प्र जायस्व प्रजया पुत्रकाम।।[94]

सूर्य का मन तो रथ के समान था या रथ मनस्मय था। अर्थात् सूर्य का मन पर शासन था। स्त्रियों का मन बड़ा बलवान होता है इससे वे दुष्ट स्वभाव वाले को दूर भगाती हैं। इस प्रकार स्त्री मन का वेद में उल्लेख प्राप्त होता है।

मन आवर्तन

ऋग्वेद के दशम मण्डल के 58वें सूक्त का विषय मन आवर्तन है। क्योंकि मन का स्वास्थ्य संयम की अपेक्षा रखता है, इसलिए इस सूक्त में भ्रान्ति से मन विविध स्थानों में भटकता हुआ अव्यवस्थित रूप में जिन दुःखों को वह पाता है उसे विविध उपचार एवं आश्वासनों से स्वस्थ करने का उपाय वर्णित है। संयमित मन ही कल्याण का साधक है। मन के दो मुख्य स्वरूप हैं- 1 नियन्त्रित मन एवं 2 अनियन्त्रित मन। नियन्त्रित मन कल्याण का साधक है एवं वही योग है। अनियन्त्रित मन वृत्ति स्वरूप है। नियन्त्रित मन से दोष दूर होते हैं, पाप दग्ध हो जाते हैं, संसर्ग से उत्पन्न स्पर्श के रोग नष्ट हो जाते हैं। **मन आवर्तन सूक्त** के 12 मन्त्रों में मन की विविध गतियों एवं शक्तियों का वर्णन करते हुए मन को पुनः लौटाने की बात कही गयी है। एक मन्त्र में मन की असीम गति का वर्णन इस प्रकार है, जो मन दूर तक पहुँचता है तथा विविध लोकों और ऐश्वर्यों के स्वामी जगन्नियन्ता तक भी पहुँचता है उसे इस शरीर में रहने और जीने के लिए पुनः व्याधि से लौटाता हूँ।

92 अथर्ववेद 6/70/1

93 ऋग्वेद 8/31/15

94ऋग्वेद 10/183/1

यत्ते यमं वैवस्वतं मनो जगाम दूरकम्।
तत्त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ।।[95]

हे क्षियमाण पुरुष ! जो आपका मन विवस्वान के पुत्र यम के पास अत्यन्त दूर चला गया है, उसी मन को हम आपके इस लोक में निवास और चिरजीवन के लिए लौटा लाते हैं।

मन विचारों के साथ उड़ता है। मन की उड़ान अवर्णनीय है। विचार मन के अग्रद्रूत हैं। विश्व का ऐसा कोई पदार्थ या तत्त्व नहीं है जो मन की पहुँच से बाहर हो। मन सुदूर तत्त्वों तक क्षणमात्र में पहुँच जाता है। अतः मन्त्र में कहा गया है- हे मनुष्य ! जो तेरा मन द्युलोक में गया और जो तेरा मन पृथिवी पर बहुत दूर तक गया, तेरे उस मन को यहाँ निवास और सुखद जीवन के लिए लौटाकर लाते हैं।

यत्ने दिवं यत्पृथिवीं मनोंजगाम दूरकम्।
तत्त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ।।[96]

यह मन धरती से आसमान तक, लोक से परलोक तक और पृथिवी से पाताल तक जाता है। वह इच्छा मात्र से द्युलोक तक और पृथिवी के छोर तक चला जाता है पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्युलोक में ऐसी कोई वस्तु नहीं है, जो इसकी गति से दूर हो। मन में दो धर्म है 1 गमन और 2 प्रत्यागमन।[97] मन यदि दूर से दूर जा सकता है तो उसे क्षण मात्र में अपने स्थान पर लौटाकर निरुद्ध किया जा सकता है। मन के इस भ्रमण को एवं इसकी चञ्चलता को निरुद्ध करके आत्मस्थ बनना चाहिए। अनेकत्र मन को भ्रंशवाली भूमि से, चारों दिशाओं से, जल वाले समुद्र से, गतिशील किरणों और आशाओं से, जल और औषधियों से, सूर्य और उषा से लौटाने की प्रार्थना की गई है।

यत्ते मरीची: प्रवतो मनो जगाम दूरकम्।
तत्त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ।।[98]

---

95 ऋग्वेद 10/58/1

96 ऋग्वेद 10/58/2

97 वैदिक मनोविज्ञान, कपिल देव द्विवेदी पृ. 20

98 ऋग्वेद 10/58/5

मन की गति विश्वव्यापी है। सारे संसार में जो मन दूर तक गया हुआ है उस मन को निवास और सुखद जीवन के लिए लौटाकर लाने का विधान है। मन समग्र विश्व में भ्रमण करने वाला है।

यत्ते विश्वमिदं जगन्मनोजगाम दूरकम्।
तत्त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ।।[99]

जब संयमशील इन्द्रियाँ मन के साथ एक होकर उसी के अनुकूल आचरण करती हैं, तब उनकी चञ्चलता, स्वच्छन्दता, उच्छृंखलता नष्ट हो जाती है। इसी कारण मन का बल भी बढ़ जाता है। बल बढ़ने से उनमें एक शोभा, एक दीप्ति आ जाती है। मन सूक्ष्म से सूक्ष्म विषयों को ग्रहण कर लेता है।

इन्द्रियों में मन प्रधान है। बाहर के दसों इन्द्रियों के निखिल व्यापारों का समायोजन वही करता है और वही उनके आत्मसम्बन्ध का माध्यम है। मन में आसुरी तथा दैवी दोनों सम्पदाएँ समाहित रहती हैं। आसुरी सम्पदा के अपनाने से हमारा ह्रास तथा दैवी को अपनाने से विकास होता है। असुरों के नीचे दबकर हम स्वयं ही नहीं मरते, दूसरों को भी मारते हैं। जबकि दैवी संरक्षण में सबको सुख ही सुख है।

वेद इसलिए मन को अपने नियन्त्रण में रखने की बात कहता है। चञ्चलता मन का एक महत्त्वपूर्ण तथा स्वाभाविक धर्म है। वह अनियन्त्रित होने पर सर्वत्र घूमता है। मन की अस्थिरता का निराकरण करके उसे अपने स्थान में लाना, यह साधन का एक अंग है। यह मन साधन के बिना किसी विषय में विशेष दक्षता नहीं प्राप्त कर सकता। मनुष्य का मन भ्रान्त हुआ दूर दिशाओं और देशों में भटकता हुआ वह मन शरीर में पुनः प्राप्त हो।

यत्ते पराः परावतो मनो जगाम दूरकम्।
तत्त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ।।[100]

---

99 ऋग्वेद 10/58/10
100ऋग्वेद 10/58/11

बौधायन ऋषि मन को त्रिकालदर्शी मानते हैं। मन का विषय केवल वर्तमान ही नहीं है, वह भूत और भविष्य सभी कालों का आकलन करता है। मन्त्रों में प्रार्थना है हम सम्यक् प्रकार से ज्ञान प्राप्त करें, उस पर भली-भाँति विचार करें, दैवी मन से कभी पृथक् न हों। मनुष्य को जीवन में श्रवण से पाण्डित्य, मनन से मुनित्व, निदिध्यासन से ऋषित्व तथा प्रज्ञा से देवत्व की प्राप्ति होती है। दिव्यता की सन्तान, दैवी स्थिति की उत्पत्ति मननशीलता के पश्चात् ही सम्भव है। अतः मन आवर्तन सूक्त के ऋषि सार रूप में कहते है-

यत्ते भूतं च भव्यं च मनो जगाम दूरकम्।
तत्त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ।।[101]

मन भूत का अनुमान करता है। उस समय किन परिस्थितियों में क्या घटनाएँ हुईं, उनका क्या प्रभाव पड़ा, उससे क्या हानि-लाभ हुआ ? इन तथ्यों का आकलन करके वह वर्तमान विषय में अपना मार्ग निकालता है तथा भविष्य के लिए विचार करता है। मन व्यक्ति के लिए ही नहीं अपितु संसार के लिए भी इसी प्रकार लेखा-जोखा तैयार करता है। अतः मन को इधर-उधर से लौटाकर स्थिरता एवं जीवनी शक्ति के लिए एक स्थान पर स्थिर करने का निर्देश है।

जागरण तथा स्वप्न दोनों अवस्थाओं में दूर-दूर भागने वाला मन स्वस्थ होकर प्रज्ञान, काम, संकल्प से ज्ञानेन्द्रियों को अपने-अपने विषयों के साथ संयुक्त करता है। कर्मेन्द्रियाँ इसी के बल पर अपने-अपने क्षेत्रों में लगती है। भूत, भविष्य और वर्तमान चारों वेद इसी शक्तिशाली मन में समाहित हैं। विदथ, युद्ध, कला और कौशल सभी का सम्पादन मन के द्वारा ही होता है। अतः मानसिक स्वास्थ्य का सम्पादन मानव के लिए अपरिहार्य है। यदि मन स्वस्थ न हुआ तो मानव योनि में आना ही व्यर्थ है।

ज्ञान - संज्ञान

वैदिक संहिताएँ ज्ञानकाण्ड, कर्मकाण्ड, उपासना काण्ड और विज्ञान काण्ड से अभिमण्डित हैं। ऋग्वेद संहिता ज्ञान प्रधान है। **ऋग्वेद के दशम मण्डल के 71वाँ सूक्त** ज्ञान सूक्त है। ज्ञान सूक्त

---

101 ऋग्वेद 10/58/12

में ज्ञान और भाषा के प्रादुर्भाव का वर्णन है। इस सूक्त का देवता ज्ञान है। ज्ञान का अर्थ जानना, समझना, परिचित होना, संज्ञान, बुद्धि, प्रज्ञादि है।[102] वेद का अर्थ भी ज्ञान है। संसार में ज्ञान ही सबसे बड़ी शक्ति है। ज्ञान विषय है- नेत्र, श्रोत्र और मस्तिष्क का। विज्ञान विषय है - हृदय और चित्त का। साधन विषय है- मन का। बोध विषय है- आत्मा का। प्रज्ञान, प्रज्ञा, ऋतम्भरा, प्रज्ञा, विवेक, स्थितप्रज्ञता ये सब ज्ञान और विज्ञान की कोटियाँ हैं। गीता का सन्देश है कि संसार में ज्ञान से बढ़कर श्रेष्ठ और पवित्र कुछ भी नहीं है।

न हि ज्ञानेन सदृशम् पवित्रम् इह विद्यते,
तत् स्वयम् योगसंसिद्धः कालेन आत्मनि विन्दति।।[103]

ज्ञान सूक्त का प्रथम मन्त्र श्रेष्ठ, निर्दोष और पूर्ण वाणी की ओर निर्देश करता है- सृष्टि की उत्पत्ति के अनन्तर प्रागवस्था में पवित्रान्तःकरण वाले पदार्थों का नाम अपने ज्ञान में धारण करने और रखने योग्य ऋषि जिस वाणी को प्रेरणा से प्राप्तकर उच्चारण करते हैं वह सबसे प्रथम आदि वाणी है। वह ऋषियों के अन्तःकरण में निहित प्रेरणा से प्रकट होती है।

बृहस्पते प्रथमं वाचो अग्रं यत्प्रैरत नामधेयं दधानाः।
यदेषां श्रेष्ठं यदरिप्रमासीत्प्रेणा तदेषां निहितं गुहाविः ।।[104]

आदिम ऋषियों में प्रविष्टा, उस वेद वाणी का अनुवर्ती के ऋषियों ने साचार अनुशीलन किया, साचार अनुशीलन के द्वारा अनु ऋषियों ने उसके रहस्यों का उद्घाटन किया। जिस प्रकार चलनी से सत्तु को छानकर साफ कर लिया जाता है उसी प्रकार धीर गम्भीर विद्वान् मन से विचार कर वाणी का प्रयोग करते हैं, वाणी के शब्दार्थ सम्बन्ध को जानते हैं, उनकी वाणी में लक्ष्मी निहित होती है।

सक्तुमिव तितउना पुनन्तो यत्र धीरा मनसा वाचमक्रत।
अत्रा सखायः सख्यानि जानते भद्रैषां लक्ष्मीर्निहिताधि वाचि ।।[105]

---

102 संस्कृत हिन्दी कोष, आप्टे, पृ. 410

103 श्री मद्भगवद्गीता 4/38

104 ऋग्वेद 10/71/1

105 ऋग्वेद 10/71/2

इस मन्त्रार्थ से यह ध्वनित हो रहा है कि मन से वाणी का शोधन और सुशोधन किया जा सकता है। मलिन मन से वाणी शुद्ध नहीं हो सकती। मन को शुद्ध और शोभनीय बनाना और पुनीत मन से वाणी को शुद्ध बना प्रिय वचनों का उच्चारण करना कोई सरल साधन नहीं है। आधुनिक संचार के साधनों, प्रवाचकों, समाचार-पत्रों के लिए यह एक दिव्य सन्देश है।

विद्वानों की संसद में लोग ज्ञान को स्थिरता से पान किया हुआ पाते है। यज्ञ, देवता और अध्यात्म वेदवाणी के फूल-फल हैं, जिसने वाणी के तत्त्व को नहीं जाना, वह केवल शब्दाडम्बर से व्यवहार करता है।

उत त्वं सख्ये स्थिरपीतमाहुर्नैनं हिन्वन्त्यपि वाजिनेषु।
अधेन्वा चरति माययैष वाचं शुश्रुवाँ अफलामपुष्पाम्॥[106]

वेदों के स्वाध्याय को छोड़ देने वाला सुकृत मार्ग को नहीं जानता और जो कुछ भी सुनता है व्यर्थ ही सुनता है। वेदज्ञ विद्वान् हृदय से भली प्रकार निश्चित किये गए ज्ञातव्य पदार्थों के विषय में समान ख्याति वाले होकर प्रवृत्त होते हैं, वाणी के तत्त्व को न जानने वाले को छोड़ देते हैं। वाणी के द्वारा ही समान ख्याति वाले विद्वान् यश से युक्त और मित्र भाव को प्रदान कर आनन्दित होते हैं। ज्ञान सूक्त के अन्तिम मन्त्र में यज्ञ के चार ऋत्विजों का कार्य वर्णित है- पहला होता ऋचाओं का उच्चारण कर उनके प्रयोग को पुष्ट करता है। दूसरा उद्गाता सामगान शक्वरी ऋचाओं में करता है। तीसरा अध्वर्यु यज्ञ की मात्रा निर्धारित करता है और चौथा चतुर्वेदविद् ब्रह्मा सब क्रियाओं और कर्तव्यों को बताता है।

ऋचां त्वः पोषमास्ते पुपुष्वान्गायत्रं त्वो गायति शक्वरीषु।
ब्रह्मा त्वो वदति जातविद्यां यज्ञस्य मात्रां वि मिमीत उत्वः॥[107]

ऋग्वेद वाक् सूक्त 10.125 में ज्ञान सूक्त के समान वाक् की महिमा का वर्णन है। वाणी सम्पूर्ण जगत् की ईश्वरी है, धनों को प्राप्त कराने वाली है, ज्ञान से सम्पन्न एवं ब्रह्म को जानने वाली है।

106 ऋग्वेद 10/71/5

107 ऋग्वेद 10/71/11

अहं राष्ट्री संगमनी वसूनां चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम् ।
तां मा देवा व्यदधुः पुरुत्रा भूरिस्थात्रां भूर्यावेशयन्तीम् ॥[108]

ज्ञान सम्पन्न वाणी जो मन से प्रयोग की जाती है वही श्रेष्ठतम है। ज्ञान सूक्त का ज्ञान सुख, शान्ति, आनन्द एवं प्रकाश का कारण है। ज्ञान से मनुष्य के स्वार्थ, परार्थ तथा परमार्थ की सिद्धि होती है। इहलोक तथा परलोक के सुख का साधन-ज्ञान है।

ऋग्वेद संहिता का अन्तिम सूक्त 'संज्ञान' है। यह सूक्त ऋग्वेद का सारतत्त्व या आत्मतत्त्व है। इसे संगठन सूक्त भी कहते हैं। संज्ञान सूक्त से यह प्रतीत होता है कि समस्त ऋग्वेद में जो कुछ अब तक उपदेश दिया गया है उसका निचोड़ यह है कि मनुष्य समाज सर्वोत्कृष्ट हो एवं मनुष्य का मन, विचार आदि शुद्ध हों। इस सूक्त में मनांसि, आकूति, हृदयानि, मन्त्रा, चित्तम् जैसे शब्दों का प्रयोग किया गया है।

सं गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम् ।
देवा भागं यथा पूर्वे सं जानाना उपासते।।[109]

सूक्त के द्वितीय मन्त्र में 'संगच्छध्वं', 'संवदध्वं', 'वः मनांसि' ये मध्यम पुरुष बहुवचन के शब्द द्रष्टव्य हैं-'आप लोग या आपके मन।' मनुष्य के मिलने के परस्पर तीन रूप है- साथ चलना, मिलकर वार्तालाप करना और मिलकर सोचना। इनमें पहला-स्थूलतम है और पिछला सूक्ष्मतम। पैर स्थूल है, वाणी सूक्ष्म है, परन्तु वाणी से भी सूक्ष्मतम मन है। इसलिए वेद मन्त्र कहता है-

सं गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम् ।
देवा भागं यथा पूर्वे संजानानां उपासते ॥[110]

108 ऋग्वेद 10/125/3
109 ऋग्वेद 10/191/2
110 ऋग्वेद, 10/191/2

अर्थात् तुम्हारे मन साथ मिलकर विचार करें। विचार सबसे प्रबल वस्तु है। अतः **'देवाभागं यथापूर्वे'**[111] कहकर मन्त्र में आदिकाल से देवताओं का ऐसा स्वभाव है यह बताया गया है।

सामान्यतः सुमति ही है- **सं वो मनांसि जानताम्।**[112]

लोकोक्ति भी प्रसिद्ध है-

जहाँ सुमति तहँ संपति नाना।
जहाँ कुमति तहँ बिपति निदाना॥[113]

संगठन के तीन मूल तत्त्व हैं-

समानी वः आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति॥[114]

विचार साम्य, हृदय साम्य और सामूहिक सफलता के लिए सर्वप्रथम आवश्यकता है कि विचारों में एकता हो।

जहाँ विचारों की एकता होगी वहाँ लक्ष्य एक होगा, साध्य एक होगा। दूसरी आवश्यकता है हृदय की एकता। हार्दिक एकता नहीं है, तो लक्ष्य एक होने पर भी सफलता नहीं मिलेगी। तीसरी मन की एकता अत्यन्त आवश्यक है। लक्ष्य एक है और हृदय में सहानुभूति भी है पर यदि क्रियाशीलता नहीं है, प्रेरणा नहीं है प्रबुद्धता नहीं है तो वह संज्ञान या संगठन दृढ़ नहीं होगा। आधे-अधूरे मन से किया गया कार्य कभी भी पूर्ण नहीं हो पाता।

विश्वशान्ति हेतु वेद की कामना है कि विश्व के सब मनुष्यों में सद्भावना, मैत्री भावना एवं विश्वबन्धुत्व का आलोक फैले। सभी मनुष्यों के विचार समान हों, सबके मन, चित्त एवं यज्ञकार्य समान हों।

समानो मन्त्राः समितिः समानी समानं मनः सह चित्तमेषाम्।

111 ऋग्वेद 10/191/2

112 ऋग्वेद 1019/2

113 रामचरित मानस, सुन्दरकाण्ड 39/6

114 ऋग्वेद 10/191/4

समानं मन्त्रामभिः मन्त्रायेवः समानेन वो हविषा जुहोमि ।[115]

यह भावना व्यक्ति को स्वतन्त्रता का अधिकार प्रदान करता है।

आश्वलायन संहिता के 10.197 सूक्त में संज्ञान की कामना की गई है- उशना संज्ञान बोले, इन्द्र और अग्नि संज्ञान बोले, सविता हमारे लिये संज्ञान बोले।

संज्ञानमुशना वदत् संज्ञानं वरुणो वदत्।
संज्ञानमिन्द्रश्चाग्निश्च संज्ञानं सविता वदत्।[116]

संज्ञान हमारे लिए आत्मीयजनों से होवे, संज्ञान हमारे लिए दूसरे लोगों से होवे। हे अश्विनी देवो! तुम दोनों यहाँ हमारे में संज्ञान प्रतिष्ठित करो।

संज्ञान नः स्वेभ्यः संज्ञानमरणेभ्यः।
संज्ञानमश्विना युवमिहास्मासु नियच्छतम्।[117]

अङ्गिरस के पुत्र कक्षीवान् का जो संवनन परस्पर एक-दूसरे को चाहने की भावनाबद्ध है, वह सबकी रक्षा करता है उसी परस्पर एक दूसरे को चाहने की भावना से सभी देवताओं ने हमारे लिये प्रिय संवनन उत्पन्न किया है। एक-दूसरे के मनों को जानने की, समान उद्देश्य के साथ चिन्तन की तथा जो वैमनस्य रखता है उसको भी साथ लाने की संज्ञान उपदेश करता है।

सं वो मनांसि जानतां समाकूतिर्मनामसि ।
असौ यो विमना जनस्तं समावर्तयामसि ।।[118]

मन की समानता और असमानता का प्रश्न बड़ा जटिल है। संसार की सभी समस्याओं का मूल मनस्तत्त्व है कि असमानता है। ज्ञान सूक्त के एक मन्त्र में इस समस्या का पूर्ण समाधान है-

अक्षण्वन्तः कर्णवन्तः सखायो मनोजवेष्वसमा बभूवुः ।
आदघ्नास उपकक्षास उत्वे ह्रदा इव स्नात्वा उत्वे ददृश्रे ।।[119]

115 ऋग्वेद 10/191/1
116 ऋग्वेद 10/191/2
117 ऋग्वेद 10/191/3
118 ऋग्वेद 10/191/4
119 ऋग्वेद 10/71/7

संसार के भूत, वर्तमान और भविष्य के प्राणी आँख और कान के प्रारम्भिक ज्ञान में सखा होते हैं, कोई विशेष ज्ञान भेद नहीं होता किन्तु 'मनोजवेषु'- मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार के स्तर पर सभी असमान होते हैं। उदाहरण के रूप में कई मुख तक गम्भीर जलाशय की तरह होते हैं, कई कांख ;कक्ष तक गम्भीर जलाशय तुल्य होते हैं और कई सिर के उपर तक गंभीर जलाशय जैसे होते हैं। आशय यही है कि बाह्य इन्द्रिय के ज्ञान में साम्य होता है और मानस जन्य ज्ञान में वैविध्य होता है, असमानता आ जाती है। किन्तु विश्व में चाहे मानस क्षेत्र में ज्ञान की असमानता कितनी ही मात्रा में क्यों न हो औसतन बिन्दु में सबका मन समानता के सोपानों में होता है।

यह ज्ञान का क्षेत्र नहीं संज्ञान का क्षेत्र है। आज ज्ञान और संज्ञान के भेद को समझने की आवश्यकता है। संज्ञान की एकत्व के लिए मन का संज्ञान आवश्यक है। जब तक विश्व के मनुष्य परस्पर एक-दूसरे के मनोभावों को नहीं समझेंगे तब तक विश्व में सर्वांगीण मानवीय एकता का प्रश्न हल नहीं हो सकेगा। संज्ञान में संगमन, संवदन के साथ समान मन्त्र, समान समिति, समान मन, समान चित्त, समान आकूति तथा समान हृदय होता है। यह वैदिक ज्ञान की सर्वश्रेष्ठता का द्योतक कहा जा सकता है।

जिस समाज में अधिक से अधिक लोग एक मन, विचार और संकल्प वाले होते हैं, वह समाज उन्नतिशील होता है। वहाँ के लोग तेजस्वी होते हैं।

उद्बुध्यध्वं समनसः सखायः समग्निमिन्ध्वं बहवः सनीडाः।[120]
दधिक्राममग्निमुषसं च देवीमिन्द्रावतोऽवसे निह्वये वः ।।

ऋग्वेद का संगच्छध्वं मन्त्र प्रत्येक व्यक्ति को समानता का अधिकार प्रदान करता है। मानवाधिकार से जुड़ा हुआ यह प्रथम अधिकार है। वस्तुतः समानता के अधिकार में ही व्यक्ति की गरिमा सन्निहित है। भारतीय संविधान में 'संज्ञान सूक्त' को आदर्श मानकर सर्वप्रथम मानवाधिकारों में समानता के अधिकार को सर्वप्रथम स्थान दिया गया है।

120 ऋग्वेद 10/101/1

सृष्टि प्रक्रिया में मन

आदिकाल से मानव की जिज्ञासा उसे सृष्टि के रहस्यों को समझने के लिए प्रेरित करती रही है । यह सृष्टि क्यों आयी, कैसे आई? इसका प्रधान कारण क्या है? इसके पीछे कौन-कौन सी शाश्वत शक्तियाँ कार्यरत हैं? इन प्रश्नों से उत्पन्न विषयों पर ऋषियों का दार्शनिक दृष्टिकोण वेद मन्त्रों में सुरक्षित है । यद्यपि सृष्टि रूपी वृक्ष का मूल वह एक, सत्, विराट्, प्रजा का सृष्टा पर ब्रह्म ही है । पुनश्चापि उसके अनेक सहायक तत्त्व हैं जैसे- प्रजापति की कामना, स्थिरता, प्राण, वाक्, मनस्, लोक, देव, ऋतुएँ आदि । ऋग्वेद के पुरुषसूक्त, हिरण्यगर्भ सूक्त, नासदीय सूक्त, अस्यवामीय सूक्त तथा अघमर्षण सूक्त सृष्टि उत्पत्ति विषयक अति ख्यात सूक्त हैं । इन सूक्तों में ब्रह्म के अतिरिक्त सृष्टि उत्पत्ति में मन को मध्यस्थ बताकर उसे सर्व प्रमुख तत्त्व स्वीकार किया गया है ।

ऋग्वेद संहिता के **नासदीय सूक्त 10.129** में सृष्टि प्रक्रिया का विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है । जो इस प्रकार है -

कामस्तदग्रे समवर्तताधिमनसो रेतः प्रथमं यदासीत् ।
सतो बन्धु मसति निर्विन्दन्हृदि प्रतीष्या कवयो मनीषा ।।[121]

मन्त्र का अर्थ है- सृष्टि के प्रारम्भ में काम ,इच्छा उत्पन्न हुआ । जो मनस् का प्रथम रेतस् बीज था । सृष्टि के प्रारम्भ में द्वन्द्वात्मकता विहीन सर्वत्र एक ही तत्त्व व्याप्त था । इसके बाद सलिल ने इसे घेर लिया और सृष्टि निर्माण की प्रक्रिया हुई। सृष्टि का निर्माण इसी मन के 'रेतस्' से हुआ । सृष्टि निर्माण की कड़ी 'सो कामयत बहुस्यां प्रजायेयेति'।[122] मैं बहुत प्रजावाला बन जाऊँ से है । अतः उसने काम के द्वारा सृष्टि की रचना की । काम अर्थात् कामना चेतन का सतत् स्वभाव है । प्रयोजन विशेष से इच्छा;अभिलाषा जो मन में उठती है वह वस्तुतः काम नहीं है । काम तो पुरुषार्थचतुष्टय में है । काम प्राणी के अस्तित्त्व से जुड़ा हुआ है ।

121 ऋग्वेद 10/129/4
122 तैत्तिरिय उपनिषद् ब्रह्मानन्दवल्ली अनुवाक 6

यह मन का प्रतिनिधि सार बल है । 'रेतस्' मन का काम बीज है । यह भाव ओषधि वनस्पति, प्राणी सबमें होता है । उत्पत्ति के पश्चात् पूरे जीवन अवधि में यही भाव पदार्थ का अस्तित्व बनाये रखता है । सृष्टि के पहले प्रजापति के मन में सृष्टि रचना का संकल्प हुआ, इच्छा पैदा हुई क्योंकि पुरानी कर्मराशि का संचय जो बीज रूप में था सृष्टि का उपादान कारण भूत हुआ । सार वही है सृष्टि का निर्माण मनस्तत्त्व के माध्यम से हुआ ।

पुरुष सूक्त 10/90 में परम पुरुष के द्वारा भौतिक सृष्टि तथा ब्राह्मणादि सामाजिक सृष्टि का चित्रण मिलता है । वहाँ ब्रह्माण्डीय अवयवों की उत्पत्ति के प्रसंग में परम पुरुष के मनस्तत्त्व से चन्द्रमा की उत्पत्ति वर्णित है-

चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत ।
श्रोत्राद्वायुश्च प्राणश्च मुखादग्निरजायत ॥[123]

मन से चन्द्रमा की उत्पत्ति बनाने का तात्पर्य यह है कि मन के सभी गुण चन्द्रमा में हैं और चन्द्रमा के गुण मन में । सूर्य परिवर्तनशील नहीं है । जैसा का तैसा बना रहता है, किन्तु चन्द्रमा के परिवर्तन से तिथि परिवर्तन, पक्ष परिवर्तन, शैत्य- औष्ण्य परिवर्तन आदि होते हैं । मन के भाव संकोच, विकासशील हैं । मन भी विषयों के अनुसार दृष्ट, उत्सुक, शोकग्रस्त आदि भावों में बदलता रहता है । चन्द्रमा के संकोच, विकास, ह्रास वृद्धि, शीतलता, आह्लाद, सौम्यता आदि गुणों का मन से सम्बन्ध है एवं मानव मन पर उसका प्रभाव पड़ता है । चन्द्रमा ओषधियों का स्वामी है और मन का ओषधियों से प्रगाढ़ सम्बन्ध है । भौतिक चन्द्रमा आनन्द और प्रकाश का द्योतक है, मन भी आनन्द और विषयों में प्रकाश का आधार है ।

यहाँ ध्यातव्य है कि मानव मन से चन्द्रमा की उत्पत्ति नहीं हुई है । अपितु विराट पुरुष के मन से चन्द्रमा की उत्पत्ति है ।

नाभ्या आसीदंतरिक्षं शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत ।
पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकाँ अकल्पयन् ॥[124]

123 ऋग्वेद 10/90/13

पुरुष सूक्त के १५वें मन्त्र में सृष्टि उत्पत्ति रूप मानस यज्ञ का सम्पादन करते हुए जब देवताओं ने विराट पुरुष रूपी पशु को बांध अर्थात् स्वीकार किया तो इस यज्ञ की सात परिधियाँ और इक्कीस समिधाएँ बनाई गई। देवताओं ने संकल्परूप मानस यज्ञ के द्वारा उस यज्ञरूप परम पुरुष प्रजापति का पूजन किया।

यज्ञेन यज्ञमयजंत देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्।
ते ह नाकं महिमानः सचंत यत्र पूर्वे साध्याः संति देवा:॥[125]

उव्वट ने आत्मयज्ञ परक अर्थ में पृथ्वी, अप, तेज, वायु, आकाश, मनस् और बुद्धि को सात परिधियाँ माना है- **श्रोत्रस्य श्रोत्रं मनसो मनो यद्वाचो ह वाचं स उ प्राणस्य प्राणः चक्षुषश्चक्षुरतिमुच्य धीराः प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति।**[126]

केनोपनिषद् में जो मन का मन कहा है उसी मन की चर्चा पुरुष सूक्त में की गई है। **ऋग्वेदीय अस्यवामीय सूक्त 1.164** से दार्शनिक परम्परा का पल्लवन हुआ है सूक्त के अठारहवें मन्त्र में 'पर' से नीचे तथा 'अवर' से ऊपर स्थित इस जगत् के पिता के बारे में जिज्ञासा की गई है। इसमें दिव्य मन की उत्पत्ति के बारे में पूछा गया है- कवि के समान आचरण करने वाला कौन व्यक्ति यहाँ वह बताएगा कि यह दिव्य मन कहाँ से उत्पन्न हुआ हैं।

अवः परेण पितरं यो अस्यानुवेद पर एनावरेण।

कवीयमानः क इह प्र वोचद्देवं मनः कुतो अधि प्रजातम्॥[127]

इस सूक्त में 'पर' परमात्मा का तथा 'अवर' जीवात्मा का वाचक है। इसमें पर, अवर के अतिरिक्त मनस्तत्त्व भी अत्यन्त गूढ़ है। आध्यात्मिकता का ज्ञान भी आवश्यक है। संसार के सम्बन्धादि का आधार 'मनस्' है। जो व्यक्ति मनस् को भली-भाँति जान लेता है, वही कवि ;तत्त्वज्ञ कहलाने का तथा उपदेश करने का अधिकारी हो सकता है। अस्यवामीय सूक्त के मन विषयक अन्य

124 ऋग्वेद 10/90/15
125 ऋग्वेद 10/90/16
126 केनोपनिषद् 1/2
127 ऋग्वेद 1/164/18

पाँच मन्त्रों के भाव दर्शनीय हैं- अपरिपक्व बुद्धिवाला मैं मन से ;तत्त्व को न जानते हुए देवताओं के निहित स्थानों के बारे में पूछता हूँ। माता पृथ्वी ने विचारपूर्वक मन से जल प्राप्त करने हेतु पिता ;द्युलोक के साथ सम्पर्क किया।

माता पितरमृत आ बभाज धीत्यग्रे मनसा सं हि जग्मे।

सा बीभत्सुर्गर्भरसा निविद्धा नमस्वन्त इदुपवाकमीयुः ॥[128]

शब्द करती हुई वसुओं की स्वामिनी ;पालिका अपने वत्स को हृदय ;मनद्ध से चाहती हुई आ गई है। सात अर्ध गर्भभूत तत्त्व लोकों के रेतस् के रूप में विष्णु के आदेशानुसार अपने-अपने कर्मों में स्थित हैं। धारणाशक्ति तथा मन से विद्वान और व्यापनशील इस जगत् को चारों ओर से आवेष्टित करते हैं।

सप्ताधर्गर्भा भुवनस्य रेतो विष्णोस्तिष्ठन्ति प्रदिशा विध्मणि।

ते धीतिभिर्मनसा ते विपश्चितः परिभुवः परिभवन्ति विश्वतः।।[129]

मैं नहीं जानता हूँ कि मैं किसके समान हूँ। तिरोभाव से सन्नद्ध हुआ मैं मन से विचारपूर्वक विचरण करता हूँ।

न वि जानामि यदिवेदमस्मि निण्यः संनद्धो मनसा चरामि।
यदा मागन्प्रथमजा ऋत् स्यादिद्वाचो अश्नुवे भागमस्याः ॥[130]

समस्त संसार में वाणी के चार पद नापे गये हैं। मनीषी मननशील ही उन्हें जान पाते हैं। अस्यवामीय सूक्त के उपर्युक्त छह मन्त्रों में सृष्टि, उत्पत्ति तथा विकास में मनस् तथा रेतस् की महती भूमिका वर्णित है।

ऋग्वेद के एक अन्य दार्शनिक सूक्त में हिरण्यगर्भ प्रजापति का उल्लेख है। विश्वकर्मा प्रजापति सृष्टि यज्ञ का यज्ञकर्ता है। जिसने जगत् की सृष्टि के लिए स्वयं का हवन कर दिया। प्रजापति

128 ऋग्वेद 1/164/8
129 ऋग्वेद 1/164/36
130 ऋग्वेद1/164/37

को एक स्थान पर ऋषि, होता तथा पिता के रूप में चित्रित किया गया है । ये तीनों रूप क्रमशः मनस्तत्त्व, प्राणतत्त्व और भूततत्त्व को द्योतित करते हैं। आत्मा के समान प्रजापति इन तीनों से युक्त है।

एतन्मयो वा अयमात्मा मनोमय वाघ्मय प्राणमयः।[131]

प्रजापति को हृदय भी कहा गया है।

एष प्रजापति यद् हृदयम्।[132]

हृदय से मन की प्रतिष्ठा होती है। मन के रूप में ही सबसे पहले विश्व तथा व्यक्ति दोनों का अविर्भाव होता है।

हिरण्यगर्भ सूक्त के छठे मन्त्र में कहा गया है- सहायता के द्वारा स्थिर किये गये तथा मन से काँपते हुए द्युलोक एवं पृथिवी लोक जिसकी ओर देखते हैं जहाँ सूर्य उदित होकर सुशोभित होता है, उसके अतिरिक्त किस देव की हवि से पूजा करें।

यं क्रन्दसी अवसा तस्तभाने अभ्यैक्षेतां मनसा रेजमाने।
यत्राधिसुर उदितो विभाति कस्मै देवाय हविषा विधेम ।।[133]

यहाँ मन से द्युलोक आदि की काँपने की बात कही गई है। यहाँ मन हिरण्यगर्भ प्रजापति की शक्ति के रूप में चित्रित है। **अघमर्षण सूक्त 10.190 में सृष्टि की** उत्पत्ति का मूल तपस् है एवं उससे ऋत् तथा सत्य की उत्पत्ति हुई है।

ऋतं च सत्यं चाभिध्दा त्तपे सोध्य जायत।
ततो रात्र्य जायत ततः समुद्रो अर्णव ।।[134]

ऋत् शब्द का प्रयोग ऋग्वेद संहिता में 646 बार किया गया है। ऋत् सम्पूर्ण जगत् का आदि करण है। धरती, आकाश, सूर्य, अग्नि आदि सबका उत्पादक एवं नियन्ता ऋत् है। ऋत्

131 शतपथ ब्राह्मण 14/4/3/10
132 शतपथ ब्राह्मण 4/5/4/1
133 ऋग्वेद 10/121/6
134 ऋग्वेद 10/190/1

ब्रह्माण्डीय नियम है। यास्क ने ऋत् का अर्थ उदक, सत्य, यज्ञ एवं रेतस् किया है। रेतस् को सबका उत्पादक मानने पर यह भी मनस् पर आश्रित माना जायेगा।

परमतत्त्व की काम, संकल्प, इच्छाशक्ति के कारण परवर्तीकाल में मन को ही ब्रह्मा कहा जाने लगा। **"मनो वै सम्राट परमं ब्रह्म"**[135] शतपथ ब्राह्मण ने मन को सर्वोच्च सत्ता तथा संसार का नियामक बताते हुए परमब्रह्म का स्वरूप प्रदान किया।

पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भव्यम्।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ॥[136]

ऋग्वेदीय पुरुष सूक्त का 'पुर' ब्रह्माण्ड तथा पिण्ड का वाचक है। पुर शब्द- पुरी आप्यायने, पुर अग्रगमने, पृ पालन पुरणयोः इन धातुओं से बना है। इनमें प्रथम कारण शरीर, दूसरा सूक्ष्म शरीर तथा तीसरा स्थूल शरीर का वाचक है। पुर वह तत्त्व है जो पूर्ण, पूर्व और पालित व पूरित करता है। वस्तुतः विराट पुरुष एवं पुरुष का आधार सृष्टि अनन्त है। उसने सृष्टि के निर्माण में प्रथम तत्त्व मन को ही रखा। इसलिए सामान्य मनुष्य भी जब कोई कार्य करता है तब वह मन से ही संकल्पना करता है।

सम्पूर्ण ऋग्वेदीय दार्शनिक सूक्तों में सृष्टि प्रक्रिया में ब्रह्म तथा सृष्टि के मध्य की कड़ी मन है। ब्रह्म कारण है एवं सृष्टि कार्य है। कारण-कार्य का मध्यस्थ है मन। कारण का कार्य में परिणति की प्रक्रिया बिना मनस् एवं रेतस् के नहीं हो सकती। अतः यह सिद्ध होता है कि परम पुरुष का यह संसार मनोमय है और इस मनोमय संसार के रहस्यों को केवल वही जानता है।

इयं विसृष्टिर्यत आबभूव यदि वा दधे वा न
यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमनत्सो अन्गवेद यदि वा न वेद ॥[137]

ऋग्वेद संहिता में सृष्टि प्रक्रिया में मनस् के साथ वाक् को भी एक विशेष देवत्व प्रदान किया गया और उसे परमात्मा, ब्रह्म के साथ तादात्म कर दिया गया। उसकी समूची सृष्टि वाक्-सृष्टि है, उसका विस्तार वाक् का विस्तार है और उसका विसर्जन वाक् का विसर्जन है। वही सृष्टि है, वही यज्ञ

135 शतपथ ब्राह्मण 14/15/10/6

136 ऋग्वेद 10/90/2

137 ऋग्वेद 10/129/7

है, वही संवत्सर है वही चित्शक्ति और इन सबको साधने के लिये मंत्र शक्ति भी है। वही ऋत् की सम्वर्धिका इडा, सत्य की सम्वर्धिका सरस्वती तथा बृहत् की सम्वर्धिका मही या भारती है।

अप्रतिमशक्ति सम्पन्न अक्षय राशि वाक् अपने को ही द्विधा विभक्त कर मन से प्रजनन में समर्थ होती है। एक तरह से समूची सृष्टि वाक् और मन का ही मिथुनी भवन है। वाक् ही नाम है और मन ही रूप है। सृष्टि नाम-रूप के अलावा और क्या है? शतपथ ब्राह्मण 11/2/3/6 के अनुसार प्रारम्भ में देवता मरण धर्मा थे। वे ब्रह्म से अर्थात् नाम रूप से युक्त होकर अमर हो गये। जो मन ही रूप है। इसको मन रूप से भी जाना जा सकता है। वाक् ही नाम है और उसी से नाम को प्राप्त किया जा सकता है। नाम और रूप ही सब कुछ है।

शतपथ ब्राह्मण के छठे-काण्ड के प्रारम्भ में सृष्टि-प्रक्रिया से सम्बन्धित एक आख्यान मिलता है। संक्षेप में उसका अभिप्राय यह है- सृष्टि के प्रारम्भ में प्राणरूप ऋषि ही थे। उन्होंने सप्तपुरुष तथा उनसे एक पुरुष की रचना की। वही प्रजापति कहलाया। प्रजापति ने कामना की **भुयान् स्याम् प्रजायेय** उसने अप् ;जल बनाया। सर्वव्यापक होने से वाक् का ही दूसरा नाम अप् है। मुख से सर्वप्रथम वाक् उच्चारित हुई और इसीलिये पहली सृष्टि वाचिक ही वेदराशि है। फिर सृष्टि बढ़ती गयी, एक के बाद एक सृष्टि से सृष्टि उत्पन्न होती गयी। पृथ्वी-अग्नि के मिथुन से वायु, वायु-अन्तरिक्ष से आण्ड, फिर रश्मियाँ और द्युलोक। सिसृक्षा और बढ़ी तो आदित्य-दिव से आण्ड। अब अगली सृष्टि के लिये उसे रेतस् धारण करना पड़ा और उससे चन्द्रमा, नक्षत्र और अवान्तर दिशाओं की रचना पूरी हुई। इतने पर भी सिसृक्षा थमी नहीं फिर उसने मन से वाक् का मिथुन किया। इस तरह एकादश रूद्र; अन्तरिक्ष में द्वादश आदित्य और समग्र देवताओं की सृष्टि की, जो दिशाओं में रहते हैं। ऐतरेय ब्राह्मण 24/4 के अनुसार वाक् और मन ही देवताओं के मिथुन है। मिथुन से ही मिथुन की प्राप्ति सम्भव है और उसी से प्रजा, पशु सभी की। इस प्रकार न केवल भौतिक सृष्टि के लिये वाक् और मन के इस मिथुन की आवश्यकता है, अपितु देवताओं के लिये भी इसकी अपरिहार्यता स्थापित है।

ऐतरेय ब्राह्मण 19/6 के अनुसार वाक् रथन्तर साम और मन बृहत् साम है वाक् ही गर्भ को धारण करती है, फिर वैरूप की सृष्टि होती है। एक तरह से इसे ऐसा भी समझा जा सकता है कि नाद ब्रह्म का समग्र विस्तार वाक् और मन का ही संसिद्ध विस्तार है। जहाँ लोक में पुरुष-स्त्री सृष्टि के कारण हैं, वहीं आध्यात्मिक और आधिदैविक स्तर पर सृष्टि के लिये मन और वाक् कारण है जहाँ मन को वृषा और वाक् को योषा कहा गया है।

मन सम्पूर्ण ज्ञान का भण्डार है

ऋग्वेद के दसवें मण्डल में मन के स्वरूप का वर्णन करते हुए बताया गया है कि मन सम्पूर्ण ज्ञान का भंडार है जो इस प्रकार है –

पतंगो वाचं मनसा बिभर्ति तां गन्धर्वोऽवद्द गर्भे अंत: ।

तां द्योतमानां स्वर्यं मनीषामृतस्य पदे कवयो निपतन्ति ।।[138]

सर्वव्यापक परमात्मा वेदत्रयी रूपी वाणी को प्रज्ञा से धारण करते हैं शरीर के अन्तः करण में विद्यमान प्राण वायु को प्रेरित करती है। स्वर्ग को प्राप्त कराने वाली बुद्धि को (वेदत्रयी रूपी ज्ञान को) को मनीषी लोग अध्ययन या प्रवचन के माध्यम से वेदत्रयी रूपी ज्ञान की रक्षा करते है।

प्रस्तुत मन्त्र में सर्वव्यापक परमात्मा के लिए पतंग शब्द का प्रयोग किया गया है जिसका अर्थ सूर्य और पक्षी दोनों अर्थों में प्रयुक्त होता है यहाँ पर आधिदैविक अर्थ में पक्षी ग्रहण किया गया है आधिभौतिक अर्थ में सूर्य रूपी देवता का ग्रहण किया है और आध्यात्मिक में सर्वव्यापी परमात्मा का अर्थ ग्रहण किया गया है।

आध्यात्मिक सर्वव्यापी परमात्मा वेदत्रयी रूपी वाणी को अपने मन में धारण करता है और उस वाणी को शरीर के मध्य में स्थित वायु प्राण के माध्यम से उसे प्रेरित करती है जिसका वर्णन पाणिनि शिक्षा ग्रन्थ में भी प्राप्त होता है जो इस प्रकार है –

138 ऋग्वेद 10/177/2

आत्मा बुध्दया समर्थ्याऽर्थान् मनोयुङ्क्ते विवक्षया।

मन: कायाऽग्निमाहन्ति स प्रेरयति मारुतम् ।।[139]

जीवात्मा बुद्धि के माध्यम से विषयों को भलीभांति समझकर प्राणीमात्र को बताने की इच्छा से मन को काम में प्रयुक्त करता है। मन शरीर की अग्नि को चलने के लिए प्रेरित करता है शरीर की अग्नि हृदय रूपी कोष्ठ में विद्यमान वायु को प्रेरित करती है।

यजुर्वेद में इस सम्बद्ध में कहा गया है कि –

यस्मिन ऋच: साम यजुंषि।[140]

मन ज्ञान का स्रोत है विश्व में जो भी मनन और चिन्तन हुआ है उनको मन में समाहित किया है अतएव ज्ञान राशि वेद में प्रतिष्ठित है।

उपरोक्त मन्त्र में बुद्धि को तेजोमयी और सुख का साधन बताया गया है, बुद्धि प्रवचन से पुष्ट होती है और सुरक्षित रहती है, जिस प्रकार ज्ञान विज्ञान की रक्षा बुद्धि का कर्म है, उसी प्रकार वेद की रक्षा बुद्धि के माध्यम से की जाती है, बुद्धि में तेजस्विता और दिव्यता है बुद्धि की यह शक्ति ही मनुष्य को तेजस्वी और दिव्य रूप प्रदान करती है।

मन का कार्य क्षेत्र

मन की अवस्था को कार्य क्षेत्र के रूप में विभाजित करके ऋग्वेद में उल्लेख किया गया है जो इस प्रकार है-

अपेहि मनसस्पतेऽप क्राम परश्चर।

परो निऋत्या आचक्ष्व बहुधा जिवातो मन: ।।[141]

139 पाणिनि शिक्षा 6

140 यजुर्वेद 34/5

141 ऋग्वेद 10/164/1; अथर्ववेद 20/96/24

हे मन के अधिपति !(दुःख स्वप्न आदि के देव)आप दूर हो जाओ, आप दूर विचरण करे, आप पाप देवता को दूर से कह दीजिये मनुष्य का मन विविध विचारों में विचरण करता है अर्थात् मन अनेक भोक्तव्य विषयों में उत्सुक रहता है।

यहाँ मन के व्यापक क्षेत्र का उल्लेख किया गया है यह मन जाग्रत अवस्था में ही नहीं अपितु स्वप्नावस्था में भी क्रियाशील रहता इसमें उसके अनावश्यक भोग्य पदार्थो के प्रति क्रियाशीलता के विनाश का विधान किया गया है। कहने का तात्पर्य यह है कि मन के दो भेद होते है प्रथम अवस्था में मनुष्य किसी सांसारिक भौतिक वस्तु को देख कर उसकी सुखद अनुभूति करता है ऐसी भौतिक वस्तुओं को देखकर वहीं दूसरी अवस्था में दुःख का अनुभव करता है अर्थात् जो भी अनुभूति होती है वह मन के माध्यम से होती है।

दु:स्वप्न के कारण पाप, दुर्विचार, काम, क्रोध आदि के माध्यम से पाप आदि का निरोध होता है, परन्तु स्वप्नावस्था में मन बुरे कार्यों के प्रति अधिक आकर्षित होकर दु:खित और चिंतित होता है। इस मन्त्र में बुरे स्वप्न को दूर करने के लिये उस पाप देवता से दूर करने की प्रार्थना करता है अब यहाँ प्रश्न उठता है कि पाप का देवता कौन है तो उत्तर प्राप्त होता है कि उस पाप का देवता स्वयं मन है अत: उसे मनस्पति कहा गया है जो दुर्विचार दुर्भाव अनिष्ट चिंतन काम क्रोध आदि भाव का निग्रह भी मन के द्वारा ही संपन्न होता है अत: उसके पवित्रीकरण पर बल दिया गया है मन के पवित्रीकरण से सम्बन्धित यजुर्वेद का ३४वाँ अध्याय शिवसंकल्प सूक्त के रूप में उल्लेखित है जो इस प्रकार है-

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति।

दूरंगं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।।[142]

अर्थात् मेरा मन शुभ विचारों वाला हो।

142 शुक्लयजुर्वेद 34/6

मन्त्र के अंतिम चरण में उल्लेख किया गया है कि मनुष्य का मन अनेक रूपों को धारण करने वाला है वह कभी बुराई की तरफ जाता है तो कभी अच्छाई की ओर, दुर्गुणों के कारण बुरे स्वप्न आकर मनुष्य के मन को दुखित करते है मनुष्य को सत गुणों को अपना कर सुखी हो और स्वप्न में सुख की अनुभूति करे।

मन अभीष्ट सिद्धि का साधन है

मनुष्य को किसी कार्य के करने में सर्वप्रथम उसके मन का लगाव उस कार्य के प्रति निर्भर करता है कि उस कार्य में कितना सहायक सिद्ध होता है। जिसका वर्णन ऋग्वेद में प्राप्त होता है जो इस प्रकार है -

मह्यं यजन्तु मम यानि हव्याऽऽकूतिः सत्या मनसो मे अस्तु ।

एनो मा नि गां कतमच्चानाहं विश्वे देवसो अधि वोचता नः ।।[143]

मेरे मन के संकल्प सफल हो, मैं किसी प्रकार के पाप न करूँ और जो कुछ हव्य है वह मेरे लिए यज्ञ की सफलता का कारण बने और मेरी उन्नति में सहायक हो, हे ! देवगण आप हमें ज्ञान प्रदान करने की कृपा करे।

अर्थात् किसी भी कार्य की सिद्धि के लिए यह आवश्यक है कि उसका संकल्प शुद्ध मन और शुभ विचारों वाला हो जब विचार शुद्ध और पवित्रतापूर्ण होता है तो उसकी सफलता अतिशीघ्र होती है। शुभ विचार नदी की जल धारा की भांति निर्मल और स्वच्छ होते है और जिस प्रकार एक शुद्ध औषधि गुणकारी होती है उसी प्रकार एक स्वस्थ्य मन किसी कार्य की सिद्धि का द्योतक होता है। सर्वव्यापक रूप से कहा जा सकता है कि स्वस्थ्य मन से लिया गया संकल्प कार्य की पूर्णता की पहचान है किसी कार्य की पूर्ति में मन महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है और दुःखी मन से लिया गया संकल्प राग द्वेष के आधिक्य को प्राप्त होता है, अतः कार्य की सफलता तथा मानसिक विचारों की

143 ऋग्वेद 10/128/4

पूर्णता के लिये आवश्यक है कि हमारा मन पाप भावना से अपवित्र न हो इसी की कामना अथर्ववेद के छठे काण्ड में की गयी है जो इस प्रकार है –

परोऽपेहि मनस्पाप: किमास्तानि शंससि

परेहि न त्वा कामये, वृक्षा वनानि संचर गृहेषु गोषु मे मन: ।[144]

इसमें ईश्वर से प्रार्थना की गयी है कि हे मन के पाप! तू दूर जा क्योंकि तू अशुभ बातों का पालक है मैं तुम्हारा आह्वान नहीं करता, तुम अरण्य में भ्रमण करो मेरा मन गृह और पुण्य कार्यों में प्रवृत्त हो तथा मेरा मन पाप के कार्यों को न सोचें और न ही पाप के कार्यों में प्रवृत्त हो मन पाप भावना दुर्विचार एवं राग द्वेष के दूर होते ही सफलता का मार्ग प्रशस्त करता है और इच्छाओं की पूर्ति से मनुष्य के अभीष्ट कार्य की सिद्धि होती है।

मनोबल या इच्छा शक्ति ही इस संसार की सर्वोत्तम शक्ति है यह असीम और अपरिमेय है इसमें भौतिक और आत्मिक सभी कार्यों को करने की क्षमता विद्यमान होती है दृढ मनोबल से मनुष्य असम्भव कार्य को भी संभव कर सकता है।

मनोनिग्रह से मृत्यु पर विजय

मन के दृढ निश्चय से सांसारिक भोग विलास से मनुष्य विरक्त होकर मृत्यु पर विजय प्राप्त कर सकता है जिसके विषय में ऋग्वेद में कहा गया है कि-

यमादहं वैवस्वतात् सुबन्धोर्मन आभरम् ।

जीवातवे न मृत्यवे, अथो अरिष्टतातये ।।[145]

मै विवस्वान या प्रकाश के पुत्र यम से अपने प्रिय मित्र के मन को जीवित रहने के लिए, न कि मृत्यु के लिए और कुशलता के लिए लौटाकर लाया हूँ।

अर्थात् इस मन्त्र में यह उल्लेख किया गया है कि यदि मनुष्य अपने मन को सांसारिक भोग विलास और सुख दुःख की भावनाओं से मन को विमुख कर वह मृत्यु पर विजय पा सकता है।

144 अथर्ववेद 1/45/6

145 ऋग्वेद 10/60/10

क्योंकि जब मनुष्य विपत्ति एवं संकट के अवसर पर अपना धैर्य खो देता है और उसके बन्धु-बांधव उसके धैर्य को आश्वाशन के माध्यम से धैर्य धारण कराते है उस समय वही उसके जीवित रहने का एक मात्र सहारा होते है। इस मन्त्र में उल्लेख ऐसे व्यक्ति का हैं जो मृत्यु के मुख में समाहित है उस समय वह जीवन और मृत्यु के द्वन्द्व में रहता है और इसी द्वन्द्व से यदि वह मन का निग्रह करता है तो वह मृत्यु पर विजय प्राप्त कर सकता है।

मनोनिग्रह के माध्यम से मृत्यु के देवता यम पर विजय पाने का उल्लेख कठोपनिषद् में यम और नचिकेता के संवाद में वर्णित है जिसमें यम के माध्यम से नचिकेता को अनेक सांसारिक सुख वैभव का प्रलोभन दिया जाता है फिर नचिकेता के द्वारा उस प्रलोभन को ठुकरा दिया जाता है क्योंकि वह आत्मतत्व विवेचन से अपने मन को कहीं भटकने नहीं देता क्योंकि उसे ज्ञात है कि यह सब क्षणिक है, वह अपना मन दृढ किये हुए रहता है।

2.2 औपनिषदिक मनस् तत्त्व

उपनिषदों में ज्ञान काण्ड की प्रधानता हैं इसलिए इनमें ब्रह्म के स्वरूप, जीव एवं ब्रह्म के परस्पर संबंध और ब्रह्म-प्राप्ति के मार्ग आदि से सम्बन्धित ज्ञान का विस्तृत वर्णन देखने को मिलता हैं। इसके अतिरिक्त इसमें वेदों के गूढ़ रहस्य भी निहित हैं। उपनिषद् शब्द की उत्पत्ति 'उप'+'नि' उपसर्ग और 'षद्' धातु के मिलने से हुई हैं। स्पष्ट अर्थ में ''वह ज्ञान जो परब्रह्म को प्राप्त करने का मार्ग प्रशस्त करे वह उपनिषद् है।"

उपनिषदों को रहस्यमय ग्रंथ भी कहा गया हैं। रहस्यात्मक तत्त्वज्ञान गुरु और शिष्यों के मध्य चर्चा का विषय रहा हैं। शिष्यों के तत्त्वज्ञान से सम्बन्धित प्रश्नों के उत्तर गुरु देते आए हैं और वे ही प्रश्नोत्तर गुरु-शिष्य के मध्य संवाद के रूप में ग्रंथों में संकलित हैं। ये वेद के अंतिम भाग हैं और इसी कारण से इन्हें वेदांत भी कहा गया हैं। शंकराचार्य ने इन्हें ब्रह्मविद्या का प्रतीक कहा हैं। उपनिषद् निश्चित रूप से वैदिक संहिताओं में से ही उद्धृत हैं। ये अनुप्राणित हैं।

उपनिषद् का शाब्दिक अर्थ

'उप'+'नि'+'षद्'- उनका विश्लेषण किया जाए तो 'उप' अर्थात् पास में, 'नि' अर्थात् निष्ठापूर्वक और 'षद्' अर्थात् बैठना। इस प्रकार इसका शाब्दिक अर्थ हुआ- 'तत्त्वज्ञान के लिए गुरु के पास निष्ठावान होकर बैठना।'

गुरु और शिष्यों के मध्य जो प्रश्नोत्तर होते थे वही इनमें संग्रहित होते गए और इस प्रकार उपनिषद् संज्ञान में आये।

प्राचीनकाल में उपनिषदों का ज्ञान सभी को नहीं करवाया जाता था और वे रहस्य रहते थे। यही कारण हैं कि इन्हें रहस्य भी कहा गया।

ब्राह्मणों और आरण्यकों की भाँति उपनिषद् भी पृथक-पृथक संहिताओं से सम्बन्धित हैं। सबसे अधिक उपनिषद् कृष्ण यजुर्वेद से सम्बन्धित हैं।

उपनिषदों की संख्या

उपनिषदों के विषय में कुछ निश्चित नहीं कहा जा सकता हैं क्योंकि मुक्तिकोपनिषद में भगवान राम और हनुमान के मध्य में हुए वार्तालाप में १०८ उपनिषदों का वर्णन मिलता हैं। कहीं-कहीं वर्णन मिलता हैं कि वेद की जितनी शाखाएं हैं उतनी ही उपनिषदों की संख्या हैं। अत: इस प्रकार समस्त उपिनषदों की संख्या १०८ हो जाती हैं।[146]

अनेक स्थानों पर उपनिषदों की संख्या कहीं १०८ और कहीं २०० से अधिक बताई जाती हैं। किंतु सर्वमान्य और महत्वपूर्ण उपनिषदों की संख्या बहुत कम हैं। निम्नलिखित श्लोक में दस उपनिषद् गिनाये गये हैं और इन्हीं की प्रतिष्ठा सर्वमान्य है-

ईश-केन-कठ-प्रश्न-माण्डूक्य-तैत्तिरि:।

ऐतरेयश्च छान्दोग्यं बृहदारण्यकं तथा ।।[147]

146 मुक्तिकोपनिषद 1/11-14

147 मुक्तिकोपनिषद 1/11-14

उपनिषद्

ईशावाश्योपनिषद्	केनोपनिषद्	प्रश्नोपनिषद्	मुण्डक उपनिषद्	माण्डूक्य उपनिषद्	ऐतरेय उपनिषद्	तैत्तिरीय उपनिषद्	छान्दोग्य, उपनिषद्	बृहदारण्यक उपनिषद्

अर्थात् - ये दस उपनिषद् हैं। कुछ लोग कौषीतकि और श्वेताश्वेतर की भी, मुख्य उपनिषदों में गणना करते हैं।

वेद और उससे सम्बद्ध उपनिषद्

क्रं. सं.	वेद	सम्बन्धित उपनिषद्
१	ऋग्वेद	ऐतरेयोपनिषद् , कौषीतकि उपनिषद्
२	यजुर्वेद	शुक्ल यजुर्वेद- बृहदारण्यकोपनिषद्, ईशावास्योपनिषद् कृष्ण यजुर्वेद- तैत्तिरीयोपनिषद्, कठोपनिषद् , श्वेताश्वेतरोपनिषद्, मैत्रायणी उपनिषद्
३	सामवेद	वाष्कल उपनिषद्, छान्दोग्य उपनिषद्, केनोपनिषद्
४	अथर्ववेद	माण्डूक्योपनिषद्, प्रश्नोपनिषद्, मुण्डकोपनिषद्

उपनिषदों की विषय-वस्तु

प्रारम्भ से ही जिज्ञासु मनुष्य मन के माध्यम से इस गवेषणा में लगा रहा हैं कि कब, क्या, कैसे, क्यों विभिन्न घटनाएँ घटित होती हैं ? उपनिषदों में भी ऐसे ही ज्ञान का गहन चिंतन वर्णित हैं। यदि श्वेताश्वेतर उपनिषद् को पढ़े तो उसके प्रारम्भ में भी ब्रह्मवेत्ता ऋषियों के समक्ष ऐसे ही प्रश्न हैं जो

जिज्ञासा से भरे हैं। जैसे- हमारे जीवन का आधार क्या हैं? हम क्यों जीवित हैं ? क्या ब्रह्म ही समस्त जगत् का कारण हैं? केनोपनिषद् के अनुसार- 'प्राण किसके द्वारा नियुक्त हैं और किसके द्वारा

गति करता हैं? हमें कौन प्रेरित एवं संचालित करता हैं? इन्द्रियों को उनके कार्यों के विषय में कौन बताता हैं?' कठोपनिषद् के अनुसार ब्रह्म परस्पर विरोधी गुणों से युक्त हैं और वह अणु से भी सूक्ष्मतम हैं एवं महानतम हैं।

परमात्मा सूक्ष्म एवं वृहत्तम सभी रूपों में विद्यमान होता है एवं मनुष्य जीवन का उदेश्य भी विश्वात्मा से जीवात्मा का सम्बन्ध जानना और उनके महत्त्व को मानना या समझना होना चाहिए। उपनिषदों का उद्देश्य भी मनुष्य को ब्रह्म ज्ञान देना एवं आत्मा के तत्त्व को जानना हैं क्योंकि यदि वह ब्रह्मज्ञानी हो जाता हैं तो जन्म-मृत्यु की लीला से छूट जाता हैं। तथा उस ब्रह्म में ही खोया रहता हैं और मोक्ष प्राप्त करता हैं।

क्योंकि जब मनुष्य ब्रह्मज्ञानी हो जाता हैं तो वह इस नश्वर शरीर में विद्यामान आत्मा को समझ जाता हैं। आत्मा ही ब्रह्म हैं उसे नष्ट नहीं किया जा सकता। वही ईश्वर है, जब मनुष्य की मृत्यु होती हैं तो उसका शरीर ब्रह्मतत्त्व में विलीन हो जाता हैं। लेकिन आत्मा ईश्वर में मिल जाती हैं और दूसरी देह प्राप्त करती हैं अर्थात् एक शरीर को त्यागकर दूसरे शरीर को प्राप्त करती हैं।

उपनिषदों में आत्मज्ञान के संदर्भ में मनुष्य की चार अवस्थाओं का वर्णन मिलता है-

प्रथम अवस्था - यह वह अवस्था हैं जिसमें मनुष्य शारीरिक उपभोग, हर्ष, क्रोध, सुख, दुःखादि विभिन्न कर्म करता हैं। यह बहिर्मुखी अवस्था हैं।

द्वितीय अवस्था - यह अवस्था स्वप्नावस्था हैं जिसमें मनुष्य लालसा आदि में लिप्त रहता हैं। यह अंतर्मुख अवस्था हैं।

तृतीय अवस्था - यह वह अवस्था हैं जिसमें वह सुषुप्तावस्था में रहता हैं। इसमें वह न तो कोई स्वप्न देखता है; न कोई कामना करता हैं न कोई कार्य अर्थात् वह सदा आनन्दित रहता हैं।

चतुर्थ अवस्था - यह अवस्था तुरीयावस्था है, जिसमें मनुष्य के सारे कार्य शांत हो जाते हैं और वह शांति प्राप्त करता हैं। उसके सारे द्वैत समाप्त हो जाते हैं और वह अद्वैत को प्राप्त करता हैं और यह अद्वैतवाद समस्त प्राणियों में केवल एक आत्मतत्त्व के दर्शन करवाता है। उपनिषद् हमें अंतर्मुख

साधना, जो कि ब्रह्मविद्या हैं उसे किस प्रकार साधा जाए, वह सिखाते हैं। ब्रह्मविद्या में परब्रह्म ही हैं जोकि इस सृष्टि का कारण हैं और वही सबका प्रकाशक है। वही जीवों की आत्मा है, वही मोक्षदाता हैं।

ध्यान, ज्ञान-भक्ति आदि साधना के अनेक मार्ग माने गए हैं और उन्हें उपनिषदों में वर्णित भी किया गया हैं। जो मनुष्य साधना के मार्ग पर चलते हैं उनके भीतर भौतिक गुणों का उद्भव स्वतः ही होता हैं। उपनिषदों में सत्य को ब्रह्म का आधार कहा गया हैं। ओऽम् को ब्रह्म का सूक्ष्म प्रतीक बताया गया हैं। ब्रह्मज्ञान के अन्यतम साधन के रूप में ओऽम् की उपासना (प्रणव की उपासना) करना वर्णित हैं। उपनिषदों में परब्रह्म के अनेक स्वरूपों का वर्णन हैं और उनकी व्याख्या भी की गई हैं। उपनिषदों में ब्रह्म चेतना का जीव में परिवर्तित होने की प्रक्रिया का वर्णन हैं। वह किस प्रकार अपना स्वरुप प्राप्त करता हैं? उसके लिए अनेक प्रकार की आहुतियाँ दी जाती हैं तब जाकर जीव उत्पन्न होता हैं।

इस प्रकार उपनिषदों में ऋषियों के चिंतन-मनन का गूढ़ रहस्य वर्णित हैं जो कि मनुष्य को परब्रह्म का साक्षात्कार कराता है और उन्हें सत्य का ज्ञान करवाता हैं।

उपनिषदों में ज्ञान-विज्ञान का भण्डार हैं। उपनिषद् से आत्मा-परमात्मा का अनुभव होता हैं। ये सत्य से परिचय करवाते हैं लेकिन फिर भी मनुष्य के लिए यह शरीर, मात्र उपभोग का साधन ही हैं। यह शरीर हमको चौरासी लाख योनियों की नौका के माध्यम से पार करने पर प्राप्त होता हैं और फिर भी मनुष्य दुष्कर्मों में लगा रहता है। कारण मात्र एक है - सत्य का ज्ञान न होना। यदि मनुष्य को मोक्ष प्राप्त करना हैं तो वह ज्ञान उपनिषदों में है। उपनिषदों में मानव-शरीर का वर्णन करते हुए बताया गया हैं कि मानव-शरीर पाँच कोशों के आवरण से ढका हैं और व्यक्ति तभी मोक्ष प्राप्त कर सकता हैं जब वह इन आवरणों का वह भेद न करें।

औपनिषदक मनस्तत्व

उपनिषद् भारतीय वाङ्मय का एक अभिन्न अंग है जिसमें मानव जीवन को सुखप्रद बनाने के लिए विभिन्न प्रकार के क्रिया कलाप को भली भांति समझाया गया है। उपनिषद् की गणना

प्रस्थानत्रयी के अन्तर्गत की जाती हैं। इसमें सूक्ष्म बिन्दुओं को लेकर अनेक प्रकार से चिन्तन किया गया है। जिनमें से एक प्रमुख मन का भी विवेचन अतिसूक्ष्म दृष्टि से लगभग सभी उपनिषदों में प्राप्त होता है। जिसका वर्णन इस प्रकार हैं- मन ही एक ऐसा माध्यम हैं जिसमें मुनष्य के चेतनता का स्वरूप हैं। जिसको विभिन्न अभिधानों के माध्यम से सम्बोधित किया गया हैं जो इस प्रकार है- ज्ञान,प्रज्ञान,मेधा,यति, धृति,मनीषा,स्मृति, संकल्प क्रतु और काम आदि। बृहदारण्यक -उपनिषद् में मन के विषय में कहा गया हैं कि-

अकृत्सनों हि सभन्वानो मनस्तान्यस्यैतानि कर्मनामान्येव।[148]

अर्थात् – अव्याकृत, अव्यक्त परमतत्व ही मनन करने के कारण मन कहलाता है। यहाँ मन को मनन कर्म के कारण परम तत्व की संज्ञा दी गई है। जो मनुष्य में विभिन्न प्रकार के मनन क्रिया के कारण रूप में विद्यमान हैं।

योगवाशिष्ठ में कहा गया हैं कि –

चित्स्वभावपरामृष्टा स्पन्दशक्तिरसन्मयी।

कल्पना चित्तमित्युक्त्या कथ्यते शात्र दृष्टिभिः॥[149]

अर्थात्– अतएव चित्त में जो स्पन्दन कला हैं, वह मन में हैं। ऐसा विद्वानों का प्रवाद हैं जो शास्त्रज्ञ चित्त स्वभाव से सम्बद्ध असन्मय स्पंद शक्ति कल्पना को चित्त शब्द कहते हैं।

मन का अस्तित्व

मनुष्य के अन्दर दो प्रकार की इन्द्रियाँ हैं।

(1) बाह्य इन्द्रिय

(2) अन्तः इन्द्रिय

जो बाह्य इन्द्रियाँ होती हैं वह सभी को परिलक्षित होती हैं। उनके समस्त क्रिया कलाप क्या हैं? क्या नहीं? यह स्पष्ट दिखायी पड़ता हैं। परन्तु मन की अन्तः इन्द्रियों में गणना की जाती हैं। इसके

148 बृहदारण्यक उपनिषद् 1/7/4
149 योग वासिष्ट -2.9.6.17

क्या क्रिया कलाप हैं यह किसी के माध्यम से या किसी के द्वारा परिलक्षित नहीं होती परन्तु यहाँ प्रश्न यह उठता हैं कि मन का अस्तित्व क्या हैं। यह मन पाँच कर्मेन्द्रियों और पाँच ज्ञानेन्द्रियों से भिन्न हैं।

यह बाह्य इन्द्रियाँ केन्द्रिय श्रवण इन्द्रियों के माध्यम से एवं सामान्य क्रियाकलापों के माध्यम से देखे सुने और अनुभव किये जाते हैं तथा भोगे गये विषय का अनुभव मनुष्य चेतन मन के माध्यम से कर सकता हैं। इससे इसका साक्षात् सम्बन्ध हैं। कहा भी जा सकता हैं कि मनुष्य मन से सुनता हैं मन से ही देखता है। इन्हीं के माध्यम से मन के अस्तित्व का बोध होता हैं। इसके विषय में बृहदारण्यक उपनिषद् में कहा गया हैं कि -

मनसा ह्येव पश्यति मनसा श्रुणोति।[150]

मन से निकटस्थ सम्बन्ध होने के कारण समस्त इन्द्रियाँ सांसारिक विषयों को भोगने और ग्रहण करने में समर्थ हैं। इस प्रकार कहा जा सकता हैं कि मानव की समस्त इन्द्रियाँ मन के अधीन हैं मन एक स्वामी का कार्य करता है। और इन्द्रियाँ भृत्य का कार्य करती हैं इसी को लक्ष्य करके कठोपनिषद् में कहा गया हैं -

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु।
वुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च।।[151]

अर्थात्- आत्मा को रथी माना गया, शरीर को रथ, बुद्धि को सारथी और मन को लगाम। इसको इस प्रकार समझा जा सकता हैं इसमें यह बताया गया जिस प्रकार रथ को अश्वों के माध्यम से खींचा जाता उसी प्रकार इस सांसारिक सुखों का भोग करने वाले शरीर रूपी रथ को विभिन्न इन्द्रियों के माध्यम से खींचा या चलायमान किया जा रहा हैं जिसमें इन इन्द्रियों को विषय के रूप में व्यक्त किया गया हैं उसीका वर्णन है। बुद्धि को शरीर रूपी रथ का सारथी माना गया है। क्योंकि बुद्धि ही मनुष्य को सही ओर गलत का निर्णय लेने में सहायक है। जिस प्रकार सारथी (युद्ध के मैदान) रणक्षेत्र की सुरक्षा करता है। उसी प्रकार बुद्धि आत्मा रूपी रथ को इस संसारिक मोह माया से बचाती है।

---

150 बृहदारण्यकोपनिषाद् 1/3/5
151 कठोपनिषद् १/३/३

इसी प्रधानता के कारण बुद्धि को सारथी कहा गया है। यदि सारथी का ध्यान मन रूपी लगाम से कुछ क्षण के लिए हटा तो इन्द्रियरूपी अश्व विभिन्न बाधारुपी गर्त में ले जा सकता हैं अर्थात् इन्द्रिय रूपी अश्व को नियन्त्रित करने के लिए मन रूपी लगाम को नियन्त्रण में रखना आवश्यक हैं क्योंकि सभी इन्द्रियाँ मन के माध्यम से नियन्त्रित की जाती है।

यह मन उस लगाम की तरह अतिचंचल है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि मन के माध्यम से समस्त इन्द्रियाँ संसारिक विषय को भोगने और ग्रहण करने में समर्थ हैं अर्थात् इन्द्रियाँ मन के अधीन होकर अपने कार्य का सम्पादन करती है। यदि मन की उपस्थिति को हटा दिया जाये तो नेत्रों के द्वारा किसी वस्तु को देखा तो जा सकता है, परन्तु देखते हुए भी उस वस्तु के विषय का ज्ञान सम्भव नही हो पाता क्योंकि मन उस समय किसी अन्य विषय का चिंतन कर रहा होता है इसीलिए उस वस्तु को देखते हुए भी नही देखा गया। ऐसा अनुभव किया जाता है।

इसी को बृहदारण्यक उपनषिद् में कहा गया है।

नादर्शमन्यत्रमना अभूवं नाश्रौषमिति मनसा ह्येव पश्यति मनसा श्रुणोति।[152]

अर्थात्- मेरा मन दूसरी जगह पर था इसलिए मैंने देखा नहीं, मेरा मन अन्यन्त्र था इसलिए मैंने सुना नहीं। इस प्रकार का अनुभव प्रत्येक मनुष्य अपने जीवन में लगभग महसूस करता है। इस प्रकार स्पष्ट रूप से कहा जा सकता हैं कि मन के अनुपस्थिति के समय इन्द्रियाँ निष्प्राण महसूस करती है। जिसके उपस्थित रहने पर मन में रहने का ज्ञान होता है। इसी मन को ज्ञान का अन्तः करण कहते है परन्तु इसे देखने पर एक प्रश्न उपस्थित होता हैं कि मनुष्य अपने जीवन में कभी-कभी यह भी अनुभव करते है कि जो स्पर्श किये जाने पर वह आभास कर लेता है कि उसे कौन स्पर्श कर रहा हैं, इस प्रकार की अनुभूति कैसे होती हैं, तो उत्तर में हम कहते है कि यहाँ स्पर्शेन्द्रिय के माध्यम से अनुभूति होती हैं, तो यहाँ मन का क्या महत्व है। तो इस प्रश्न का उत्तर यह हैं कि जो उसे स्पर्शेन्द्रिय रूपी ज्ञान का

152 बृहदारण्यकोपनिषाद् 1/3/5

कारण हैं ’वह’ मन में समाहित हैं इससे सिद्ध होता हैं कि मन का अस्तित्व हैं। इसके विषय में बृहदारण्यक उपनिषद् में कहा गया हैं कि -

मन एव तस्मादपि पृष्ठत उपस्पृष्टो मनसा विजानाति य: कश्च शब्दो वागेव सा। [153]

ये समस्त मन ही है। इसी से पार्श्व से स्पर्श किये जाने पर मनुष्य मन से जान लेता है। जो कुछ भी शब्द है वह वाक् ही है। इसी से सम्बन्धित ऐतरेयोपनिषद में कहा गया है कि-

यदि मनसा ध्यातं यद्यपानेनाभ्यपानितम्।[154]

यदि मन से चिंतन कर लिया जाये।

मन का स्वरूप

मन के अनेकार्थ रूप है। जो काम, स्त्री के सम्बन्ध की अभिलाषा, संकल्प, प्रत्युपस्थित विषय शुक्ल नीलादि भेद में विशेष कल्पना,चिकित्सा, संशय, ज्ञान, श्रद्धा जिनका फल अदृष्ट है तथा उन कर्मों व देवताओं में आस्तिकता का भाव रखना श्रद्धा हैं और इसके विरुद्ध भाव को रखना, लज्जा और भय ये सभी भाव मन के हैं।

आत्मनो एष प्राणो जायते यथैषापुरुषे छायैतस्मिन्नेत दाततं मनोकृतेनायात्यस्मिञ्शरीरे॥ [155]

यह प्राण आत्मा से उत्पन्न होता है। जिस प्रकार मनुष्य शरीर से यह छाया उत्पन्न होती है| उसी प्रकार इस आत्मा में प्राण व्याप्त है, यह मनोकृत संकल्प आदि से शरीर में प्रवेश कर जाता है।

त्रयो लोका एत एव वागैवृग्वेदो मनो यजुर्वेद: प्राण: सामवेद:।[156]

तीनों वेद में वाक् ही ऋग्वेद है, मन यजुर्वेद और प्राण सामवेद है। देवता पितृगण और मनुष्य ये सभी वाक् देवता है, मन पितृगण है और प्राण मनुष्य है। पिता माता और प्रजा यही है, मन पिता है तो वाक् माता, प्राण प्रजा है।

इसी को वेदान्तसार में इस प्रकार कहा गया हैं कि -

---

153 वही 1/5/3

154 ऐतरेयोपनिषद् 1/11/3

155 प्रश्नोपनिषद् 3/3

156बृहदारण्यकोपनिषाद् 1/5/5

''मनोनाम संकल्प विकालपात्मिकाऽन्तः करण वृत्तिः अनयोरेव चित्ताहंकारयोरन्तर्भावः"।[157]

अर्थात्- अन्तःकरण की संकल्प विकल्पात्मक वृत्ति को ही मन कहते हैं। अर्थात्- चित्त और अहंकार का मन और बुद्धि में अन्तर्भाव हो जाता है। संशय रूप वृत्तिमन हैं ओर निश्चयात्मिका बुद्धि हैं।

अर्थात् - अनुसन्धान रूपी स्मरण वृत्ति चित्त और अभिमानात्मिका अन्तः करण की वृत्ति अहंकार कहलाती है। इस प्रकार मन बुद्धि अहंकार और चित्त ही अन्तः करण हैं इसके विषय में संशय, विषय, गर्व और स्मरण है।

मनुष्य जो भी अन्न का भक्षण करता हैं। वह उदर में उपस्थित जठराग्नि के माध्यम से तीन भागों में विभक्त होता है। भक्ष्य किये हुए अन्नका स्थूलतम रूप पुरीष- मल और मध्य अंश मध्यम धातु बनता हैं। अन्न रस आदि के रूप में परिणत होकर मांस रूप हो जाता है। मन की प्रकृति उसकी पाचन क्रिया पर निर्भर करती है। अन्न का जो सूक्ष्यतम अंश हैं उसी से मन का निर्माण होता हैं। इस प्रकार मन अन्नमय हैं। जिस प्रकार दूध से बनी दही को मथनी से मथने पर उसमें सूक्ष्य रूप में उपस्थित माखन नवनीत के रूप में बाहर आ जाता हैं। इसी को उस दही का सार यानी जो अंतिम लक्ष्य प्राप्त करना था वही नवतीत है। उसी प्रकार उदर में उपस्थित जठराग्नि रूपी मथानी से मथे जाने पर मन रूप में उत्पन्न होता है अर्थात् भक्षण किए हुए अन्न से भी ऊर्जा या शक्ति की प्राति होती है। उसी से मन में शक्ति का संचार होता हैं।

अन्नमशितं विधीयते तस्य यः स्थविष्ठो धातुस्तत्पुरीषं भवति यो माध्यमस्तन्माँ संयोऽणिष्ठस्तन्मनः [158]

157 वेदान्तसार आद्या प्रसाद कृत पृष्ठ 60

158 छान्दोग्योपनिषद् 6/5/1

खाया हुआ अन्न तीन भाग में विभक्त होता है। उसका जो अत्यंत स्थूल भाग होता है वह मल हो जाता है, जो मध्यम भाग होता है वह मांस हो जाता है और जो अत्यंत सूक्ष्म होता है वह मन हो जाता है।

दध्न: सोम्य मथ्यमानस्य योऽणिमा स ऊर्ध्व: समुदी षतित्त्सर्पिभवति। एवमेव खलु सोम्यान्नस्याश्यमानस्य योऽणिमा स ऊर्ध्व: समुदीषतितन्मनो भवति ।।[159]

मन का अन्न से युक्त होने का अनुभव उद्दालक के पुत्र श्वेतकेतु ने इसका अनुभव किया इस पर आरूणि के पुत्र कहते हैं कि वत्स तुम पन्द्रह दिन तक अन्न ग्रहण मत करों तब उसने अन्न ग्रहण नहीं किया तत्पश्चात् सोलहवें दिन ऋक् आदि मन्त्रों का पाठ करने के लिए कहा तो श्वेतकेतु ने पाठ आरम्भ कर दिया। परन्तु उसे पाठ याद नहीं हो रहा था क्योंकि उसके मन में ऋक् आदि की प्रतीत नही हो रही थी क्योंकि वह जो भी पाठ करता उसे समझ में नही आ रहा था तब वो अपने पिता के पास गये और इस पर उसने पूछा तो पिता उसे समझाते है कि जिस प्रकार अग्नि में अंगार जब खद्योत के प्रकाश की भांति शेष रह जाता हैं तो उसमें जलाने का सामर्थ्य समाप्त हो जाता है। उसी प्रकार तुमने भी पन्द्रह दिन भोजन नहीं किया इसी से तुम्हारी इन्द्रियाँ और समस्त कलाएँ नष्ट हो गई है केवल सोलहवीं जो ध्रुव कला कहलाती है। वह शेष बची हैं यही कारण हैं कि तुममें जानने की शक्ति नहीं रह गयी है।

जिस प्रकार उस अग्नि को कुछ इन्धन से पुनः प्रज्वलित कर दिया जाए तो उसमें जलाने का सामर्थ्य आ जाता है।। उसी प्रकार अपनी बची हुई ध्रुव कला को अन्न के माध्यम से पुष्ट करो, तो श्वेतकेतु ने पिता के आज्ञा का पालन करते हुऐ अन्न ग्रहण किया और अन्न ग्रहण करने के पश्चात् वह ऊर्जा संपन्न हो वह पुनः लौटते है। तो पिता के द्वारा किये गये सभी प्रश्नों का उत्तर देने में अपने आप को समर्थ पाते है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि मन को अन्न के माध्यम से पुष्ट करने के पश्चात् ही वेदार्थ ज्ञान प्रदान करना चाहिये इसी से श्वेतकेतु को आभास हुआ कि मन अन्नमय हैं।

159 छान्दोग्योपनिषद् 6/1/6

अन्नमयँ ही सोम्य मन आपोमय: प्राणास्तेजोमयी वागिति भूय एव मा भगवान्विज्ञापत्विति तथा सोम्येति होवाच ।[160]

आरुणि ने कहा कि मन अन्नमय है प्राण जलमय है ।

षोडशकल: सोम्य पुरुष: पञ्च दशा हानि माशी: काममप: पिबा पोमयः प्राणों न पिबतोविच्छेत्स्य इति ।।[161]

छान्दोग्योपषद् में गुरु के द्वारा अपने शिष्य को बोध कराते हुए कहते है कि पुरुष सोलह कलाओं वाला होता है । और पन्द्रह दिन तक भोजन मत करो केवल यथेच्छ जलपान करो । प्राण जलमय है, इसलिए उसका नाश नहीं होगा ।

एवँ सोम्य ते षोडशानां कलानामेका कलातिशिष्टाभूत्सान्नेनोपसमाहिता प्राज्वाली तयैतर्हि वेदाननुभवस्यन्नमयँहि सोम्य मन आपोमय: प्राणस्तेजोमयी वागिति तद्धास्य विजज्ञाविति विजज्ञाविति ।।[162]

इसी प्रकार हे सोम्य ! आपकी सोलह कलाओं में से एक कला अवशिष्ट रह गयी थी । वह अन्न के माध्यम से, वृद्धि को प्राप्त अर्थात् प्रज्वलित कर दी गयी है अब उसी से आप वेदों का अनुभव कर रहे हो वह मन अन्नमय है, प्राण जलमय है और वाक् तेजोमय है इस प्रकार वह ज्ञाता इस बात को भली भांति समझ गया ।

मन का निवास हृदय है

मन के निवास के विषय में विद्वानों का अपना-अपना मत है । परन्तु उपनिषदो में मन का निवास स्यान हृदय को बताया गया है । जिसके विषय में ऐतरेय उपनिषद् में इस प्रकार उल्लेख मिलता हैं ।

160 छान्दोग्योपनिषद् 6/5/6
161 वही 6/1/7
162 छान्दोग्योपनिषद् 6/6/7

अग्निर्वाग्भूत्वा मुखं प्राविशद्वायुः प्राणो भूत्वा नासिके प्राविशदादित्यश्चक्षुर्भूत्वाक्षिणी प्राविशाद्दिशः श्रोत्रं भूत्वा कर्णौ प्राविशन्नोषधिवनस्पतयो लोमानि भूत्वा त्वचंप्राविशंश्चन्द्रमा मनो भूत्वा हृदयं प्राविशन्मृत्युरपानो भूत्वा नाभिं प्राविशदापो रेतो भूत्वा शिश्नं प्राविशन् ॥[163]

अर्थात् – अग्नि ने वागिन्द्रिय होकर मुख में प्रवेश किया, वायु ने प्राण होकर नासिका के रंध्रों में प्रवेश किया, सूर्य ने चक्षु इन्द्रिय होकर नेत्रों में प्रवेश किया, दिशाओं ने श्रवण इन्द्रिय होकर कानों में प्रवेश किया ,ओषधि और वनस्पतियों ने लोम होकर त्वचा में प्रवेश किया, चन्द्रमा मन बनकर हृदय में प्रविष्ट हुआ मृत्यु ने अपान होकर नाभि में प्रवेश किया, जल ने वीर्य होकर लिंग में प्रवेश किया।

इसी को बृहदारण्यक उपनिषद् में कहा गया है। कि –

त्रीण्यात्मने ऽकुरुतेति मनो वाचं प्राण तान्यत्मनेऽकुरुतान्यत्र मना अभूवं नादर्शमन्य त्रमना अभूवं नाश्रौषमिति मनसा ह्येव पश्यति मनसा श्रुणोति ॥ [164]

अर्थात् वह परमतत्व मन से ही देखता है और मन से ही सुनता है। हृदय से ही रुपों का ज्ञान प्राप्त करता है। इस प्रकार मन और हृदय ही मन संवाद रुपी अन्तःकरण के ज्ञान का साधन है। छान्दोग्योपनिषद् में कहा गया हैं। कि –

अथ यो वेदेदं मन्वानीति स आत्मा मनोऽस्य दैवं चक्षुः स वा एष एतेन दैवेन चक्षुषा मनसैतान्कामान्पश्यन्रमते ॥[165]

मन उसका दिव्य नेत्र है। यहाँ पर प्रश्न उपस्थित होता हैं कि मन को दिव्य क्यों कहा गया है। इसका उत्तर यहाँ उपस्थित होता हैं कि मन समस्त इन्द्रियों में असाधारण है। फिर पूछा जाता हैं कि वह कैसे ? तब कहते है कि वह मन इन्द्रियों में श्रेष्ठ है। इतना ही नहीं मन समस्त इन्द्रियों को अपने-

163 ऐतरेयोपनिषद् 1/4/2

164 बृहदारण्यकोपनिषाद् 1/3/5

165 छान्दोग्योपनिषद् 8/5/12

अपने विषयों के प्रति रूचि उत्पन्न करता है। मन इन समस्त इन्द्रियों से व्यापक व सूक्ष्म है। क्योंकि वह वाक् शक्ति प्रदान करता हैं। तथा उस पर छान्दोग्योपनिषद् में भी कहा गया हैं कि

मनोवाच वाचो भूयो । स यो मनो ब्रह्मेत्युपासते यावन्मनसो गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति यो मनोब्रह्मेत्युपासतेऽस्ति भगवो मनसो भूय इति मनसो वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान् ब्रवीत्विती ।।[166]

अर्थात् - मन वाणी से श्रेष्ठ और व्यापक है तथा इन्द्रियाँ वर्तमान विषय को भोगने में समर्थ हैं इसलिए उसे अदैव कहा जाता हैं। मन तीनों कालों में विषयों की उपलब्धि में करण है। इसलिए मन को दैव चक्षु की संज्ञा प्रदान की गयी है। मन का विषय कल्पना और चिन्तन है। अनेक परिस्थियों में मन के द्वारा विभिन्न प्रकार की अभिव्यक्तियाँ होती है। मन के अन्दर अनेक प्रकार से चेतना का संचार होता है। मन को त्रिकालदर्शी भी कहा गया है। इसके विषय में ऋग्वेद में कहा गया है। मन वाणी से श्रेष्ठ है जिस प्रकार दो आँवले ,दो बेर दो बहेड़े मुठ्ठी में आ जाते है उसी प्रकार वाक् और नाम का मन में अंतर्भाव हो जाता है यह पुरुष जिस समय मन से विचार करता है कि मन्त्रों का पाठ करूँ तभी पाठ करता है, जिस समय सोचता है कि काम करूँ तभी काम करता है जब उसके मन में विचार होता है कि पुत्र और पशु की इच्छा करूँ तभी उसकी इच्छा की पूर्ति होती है। मन ही आत्मा है, मन ही लोक है, मन ही ब्रह्म है।

यत्ते भूतं च भव्यं च मनो जगाम दूरकम् ।

तत्त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ।।[167]

हे सुबन्धो! जो आपका मन भूत और भविष्य के प्रपंच में बहुत दूर चला गया है। उस सर्वत्र गत मन को हम दीर्घजीवन और निवास के लिए लौटाते हैं। अर्थात् - शरीर के सीमित रहते हुए भी मन देश और काल की सीमा का उल्लंघन कर जाता है। मन रूपी पक्षी, विचार रूपी पंख के माध्यम से धरती से आकाश तक तथा लोक से परलोक तक पृथ्वी से पाताल तक गमन करता रहता है। उसे किसी

166 छान्दोग्योपनिषद् 7/2/3

167 ऋग्वेद 1058/12

प्रकार से बांधा नही जा सकता है। ऐतरेयोपनिषद् में कहा गया हैं कि हृदयरूपी मन में समग्र रूप से जानने की शक्ति है।

यदेतद्धृदयं मनश्चैतत्। संज्ञान माज्ञानं विज्ञानं प्रज्ञानं मेधा दृष्टिधृतिर्मनिषा जूतिः स्मृतिः संकल्पः क्रतु रसुः कामो वश इति सर्वाण्येवैतानिप्रज्ञानस्य नामधेयानिभवन्ति।[168]

अर्थात् - यह जो हृदय है वही मन है। चेतनता और प्रभुता ,विज्ञान और प्रज्ञान, मेधा, दृष्टि, मति, मनीषा, जुति(रोगादि जनित दुःख) स्मृति, संकल्प, क्रतु, असु (प्राण) काम और वश ये सभी प्रज्ञान अर्थात् मन के विभिन्न नाम है।

आज्ञानामाज्ञप्तिरीश्वरभावः।[169]

दूसरों को आज्ञा देने की शक्ति अज्ञान है।

तन्मनसाजिघृक्षत्तन्नाशक्नोन्मनसा ग्रहीतुं स
यध्यैनन्मनसाग्रहैष्यद्ध्यात्वा हैवान्नमत्रप्स्यत्।[170]

उस ज्ञान को उसने मन से ग्रहण करना चाहा, किन्तु चंचल मन ग्रहण न कर सका।यदि वह मन से ग्रहण कर लेता तो इस पुरुष का ध्यान ग्रहण करके तृप्त हो जाया करता।

मन शरीर में सर्वाधिक वेगवान है मन के विषय में ईशावास्योपनिषद् में कहा गया हैं कि मन में जवीय (अत्यंत वेगवान्) आत्मा हैं।

अनेजदेकं मनसो जवीयो नैनद्देवा आप्नुवंपुर्वमर्षत्।
तद्धावतोऽन्यानत्येति तिष्ठत्तस्मिन्नपो मातरिश्वा दधाति।।[171]

मानव शरीर में आत्मा का अस्तित्व होने के कारण मन मनन करता है। यहाँ प्रश्न उपस्थित होता हैं कि मन किसका मनन करता हैं तो कहा गया कि जो मन में रहने वाला है। जिसे मन नहीं जानता है। मन

168 ऐतरेयोपनिषद् 3/1/2
169 ईशादि नौ उनिषद् , ऐतरेय उपनिषद् पृष्ठ 886
170 ऐतरेयोपनिषद् 1/8/3
171 ईशावास्योपनिषद् 4

जिसका शरीर हैं जो मन के अन्दर समाहित होकर मन का नियमन करता है। वह अन्तर्यामी और अमृत है। इसे बृहदारण्यक उपनिषद् में इस प्रकार उल्लेख किया गया हैं-

यो मनसि तिष्ठन्मनसोऽन्तरो यं मनो न वेद यस्य

मनः शरीरम् यो मनोऽन्तरो यमयत्येष त आत्माऽन्तर्याम्यमृतः ॥[172]

केनोपनिषद् में मन के विषय में इस प्रकार कहा गया हैं कि-

केनेषितं पतति प्रेषितं मन: केन प्राण: प्रथम: प्रैति युक्त: ।

केनेषितां वाचमिमां वदन्ति चक्षु: श्रोत्रं क उ देवो युनक्ति ।। [173]

यह मन किसके द्वारा इच्छित और प्रेरित होकर अपने विषयों को ग्रहण करता है। अर्थात् यह मन अचेतन पदार्थो की प्रवृत्ति रूप लिंग से उनकी प्रेरणा करने वाला है। ऐसे विशेष तत्व के विषय में प्रश्न करना उचित नहीं हैं क्योंकि रथ आदि अचेतन पदार्थो की प्रवृत्ति भी चेतन प्राणियों से अधिष्ठित होकर देखी जाती है। मन आदि अचेतन पदार्थो की भी प्रवृत्ति देखी जाती हैं। यही उनके चेतन अधिष्ठाता के अस्तित्व का अनुमापन लिंग हैं अतः आत्मा आत्मत्व द्वारा प्रेरित होकर अपने विषयों की ओर उन्मुख होती हैं।

यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनो मतम् ।

तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदीदमुपासते ।। [174]

जो मन से मनन नहीं किया जाता,बल्कि जिससे मन मनन किया हुआ कहा जाता है। इस प्रकार कहा जा सकता है। कि मन को मनन करने और बुद्धि को चिंतन शक्ति प्रदान करने वाला तथा उन्हें मनन और निश्चय करने में नियुक्त करने वाला जो है वह ब्रह्म हैं। अर्थात् जिसका मन के द्वारा मनन नहीं किया जाता हैं मन और बुद्धि के एकत्व रूप से यहाँ मन शब्द से अन्तः करण का ग्रहण किया जाता हैं। जिसके द्वारा मनन करते हैं उसे मन कहते हैं। वह समस्त इन्द्रियों के विषयों में व्यापक

172 बृहदारण्यक उपनिषद् 2/7/3

173 केनोपनिषद् 1/1

174 केनोपनिषद् 5/1

होने के कारण सम्पूर्ण इन्द्रियों के लिए समान है। काम, संकल्प, संशय, श्रद्धा, अश्रद्धा, धैर्य, लज्जा, बुद्धि और भय ये सभी मन में समाहित हैं।

कामान्य: कामयते मन्यमानः स कामभिर्जायते तत्र तत्र।

पर्याप्त कामस्य कृतात्मन स्त्विहैव सर्वे प्रविलीयन्ति कामा: ।।[175]

मनुष्य जिस प्रकार की कामना करता हैं। मन उन कामनाओं के वशीभूत होकर उन्हीं स्थानों में जन्म लेता हैं। इसी को अन्य प्रकार से बृहदारण्यकोपनिषद् में कहा गया हैं। जो इस प्रकार हैं-

काममय एवायं पुरुष इति स यथाकामो भवति तत्क्रतुर्भवति।

यत्क्रतुर्भवति तत्कर्म कुरुते यत्कर्म कुरुते तदभिसंपद्यते ॥[176]

जिस प्रकार की कामना होती है। उसी प्रकार का दृढ़ संकल्प होता हैं और जैसा संकल्प होता हैं उसी के अनुरूप कर्म होता हैं और कर्म के अनुसार फल की प्राप्ति होती हैं जैसा कि उपनिषदों में उल्लेख हैं कि मृत्यु के समय मनुष्य का लिंग शरीर और मन निःशक्त हो जाता हैं। इस प्रकार यहाँ प्रश्न उपस्थित होता हैं कि यदि मन ही काम संसरण का मूल कारण हैं तो इन्द्रियों की क्या उपयोगिता ? तो इस प्रश्न का जवाब देते हुए पिप्पलाद ऋषि कहते हैं कि संकल्प से मनुष्य, मन में जिस प्रकार की कामना करता हैं उस कर्म के अनुसार वैसे संकल्प होते है, उसी प्रकार पुनः शरीर का निर्माण होता हैं क्योंकि मरणासन्न पुरूष की समस्त इन्द्रियाँ उसके मन में समाहित हो जाती है। जीवत्मा मन में समाहित हुई इन्द्रियों को साथ लेकर उदान वायु से दूसरे शरीर में प्रवेश करता हैं अतः अन्तिम काम अर्थात् संकल्प के अनुसार जीवात्मा विभिन्न लोक में विचरण करता हैं।

विशिष्ट ज्ञान से मनोवल श्रेष्ठ हैं मनोबल से मनुष्य अजेय हो जाता हैं। वह कभी पराजित नहीं होता। मुण्डकोषनिषद् में कहा गया हैं आत्मा बलहीन को नहीं प्राप्त होती –

नायमात्मा बलहीनेन लभ्यो न च प्रमादात्त्पोसोवाप्यलिंगात्।

एतैरूपयैर्यतते यस्तु विद्वान्स्त स्यैष आत्मा विशते ब्रह्मधाम ।।[177]

---

175 मुण्डकोपनिषद् 3/2/2

176 बृहदारण्यकोपनिषद् 4/4/5

जिस प्रकार सौ विज्ञानवान् प्राणियों को एक बल सम्पन्न प्राणी इस प्रकार कंपायमान बना देता है कि जिस प्रकार मनुष्यों के झुण्ड में कोई मतवाला हाथी। ऐसा इसलिये सम्भव है कि क्योंकि वह दृढ प्रतिज्ञ मनोबल वाला हैं इसी से सभी कम्पायमान हो जाते हैं यह मनोबल विभुरूप हैं यह मनः शक्ति ही मनुष्य का सर्वश्रेष्ठ मित्र है। आत्मबल से मनुष्य के मन में मानव कल्याण और विश्व कल्याण की भावना उत्पन्न होती है।

मनुष्य को यह मनोबल अन्न से प्राप्त होता हैं क्योंकि यदि कोई व्यक्ति दस रात्रि तक कुछ न खाये, उसके बाद भी वह जीवित रहे तो वह अदृष्टा, अमन्ता, अबोद्धा अकर्ता अविज्ञान हो जाता हैं उसके पश्चात् उसका मन कार्य करना छोड़ देता हैं परन्तु जब उसे अन्न प्राप्त होता है। तब फिर वह देखने, सुनने, मानने, जानने काम करने और समझने वाला बन जाता हैं इस प्रकार अन्न से जल, जल से तेज, तेज से आकाश, आकाश से स्मृति है। स्मृति का भूतकाल से सम्बन्ध हैं तो भाषा का भविष्य से। जब मनुष्य मनन करता है। तभी वह विशेष रूप से जानता है। सत्य को विशेष रूप से जानना ही विज्ञान है। इन्द्रियसंयम और चित्त की एकाग्रता कृति है।

कृतिरिन्द्रियसंयमश्चितैकाग्रताकरणं च।[178]

मन स्वप्नशील है

स्वप्न मन का वह अनुभव हैं जिसमें शरीर के बोध की स्थिति मात्र भी नहीं रहती। मन देखे हुए पदार्थ को स्वप्न के माध्यम से देखता हैं। तथा सुने हुए शब्दों को सुनने की अनुभूति करता है और सभी वस्तुओं का पुनः उपभोग करता है। जिसका उसे अन्य स्थान तथा देशों में अनसुने अनुभव किये अथवा न किये के सामान है, वास्तविक तथा कृत्रिम इन सबका आनन्द ग्रहण करता हैं मन के द्वारा समस्त कार्य देखे व सम्पादित किये जाते है। मन केवल उन विचारों के द्वारा गतिशील नहीं होता जो इन्द्रियार्थ सन्निकर्ष के फलस्वरूप प्रवाहित होता है। अतः जाग्रत अवस्था के अनुभूत अनुभवों के द्वारा ही नहीं अपितु अनुभूत अवास्तविक अनुभवों के द्वारा भी स्वप्न की संरचना होती है। जिस

177 मुण्डकोपनिषद् 3/4/2

178 छान्दोग्योपनिषद् 7/1/21

प्रकार नाभि में छिपी हुई कस्तूरी को गन्ध से व्याकुल मृग सम्पूर्ण अरण्य का भ्रमण करता रहता हैं उसी प्रकार स्वप्न में मनरूपी मृग भ्रमण करता है।

स्वप्नावस्था मनुष्य का संध्यस्थान माना गया हैं संध्यस्थान का तात्पर्य हैं कि इहलोक और परलोक की जो संधि हैं उसमें रहने वाला जो तीसरा संध्यस्थान हैं वहीं स्वप्न स्थान जो वर्तमान में जन्म का कारण है। वह इहलोक है और शरीर आदि के वियोग के पश्चात् अनुभव होने वाला परलोक स्थान हैं स्वप्न में मन की महान शक्ति स्फुरित होती है, स्वप्न में न कोई रथ होता हैं न अश्व और न मार्ग किन्तु मन उनकी सर्जना कर लेता हैं। स्वप्न में पुत्रादि की प्राप्ति से होने वाला हर्ष आनन्द , आमोद और प्रमोद नहीं होते किन्तु वह आनन्द आमोद और प्रमोद की रचना कर लेता हैं वहाँ छोटे-छोटे सरोवर और नदियाँ नहीं होती परन्तु मन उनकी सृष्टि कर लेता हैं अतः मन ही स्वप्न का सर्जक है।

छान्दोग्योपनिषद् में कहा गया हैं कि –

तद्यत्रैतस्सुप्त समस्तः सम्प्रसन्नः स्वप्नं न विजानात्यासुतंदा नाडी सु सुप्तो।

भवति तं न कश्चन पाम्मा स्मृशति तेजसा हि तदा सम्पन्नो भवति ।।[179]

अर्थात् - जब मनुष्य सोता हैं तो वह सत् से सम्पन्न हो जाता हैं वह अपने स्वरूप को प्राप्त हो जाता हैं इसलिए उसे स्वपिति कहते हैं क्योंकि वह उस समय स्व अपने में ही अपीत हो जाता है। क्योंकि जब मनुष्य स्वप्न देखता हैं तो वह सुख दुःख देखता हैं परन्तु वह सुषुप्ति में वह पुण्य और पाप से असम्बद्ध तथा हृदय के सभी शोकों को पार कर लेता हैं इसका वह रूप धर्माधर्म तथा अविद्या से रहित हैं यह परमानन्द हैं आरुणी ने कहा कि सुषुप्ति में ही जीव भाव से रहित अपने देवता स्वरूप को दिखाऊगाँ। स्वप्नान्त कब होता हैं ? जब सोने वाले पुरूष का स्वपिति ऐसा नाम होता है। इसका तात्पर्य यह हैं कि तब सत् शब्द से वाच्य तत्व मन में प्रविष्ट हुआ मन आदि के सन्सर्ग से प्राप्त हुए देह रूप को छोड़कर अपने सत् रूप को जो कि परमार्थ सत्य हैं उसे प्राप्त हो जाता हैं अर्थात् मनरूपी

179 छान्दोग्योपनिषद् 8/3/6

यजमान प्रतिदिन ब्रह्म के यहाँ जाता हैं और श्रव्यनिवृत्ति कर अपने स्वाभाविक रूप को प्राप्त करता हैं आज के इस तनाव भरे जीवन में मनुष्य अपने स्नायुतन्त्र को शान्त करने के लिए अनेकानेक प्रकार के नशीले एवं मादक द्रव्यों के प्रयोग की ओर उन्मुख हो रहा हैं। इसकी अपेक्षा यदि वह योग एवं अध्यात्म की ओर अग्रसर होता हैं तो सम्भवतः अधिक उपयुक्त रहता।

तैत्तिरीय संहिता में कहा गया है कि

इदं वा अग्ने नैव किंचनासीत। न द्योरासिन्न पृथ्वी नान्तारिक्षम,

तदसदेव सन्मनोऽकुरुत स्यामिति।[180]

अर्थात् - प्रलयावस्था में कुछ नहीं था न द्युलोक, न अन्तरिक्ष और न पृथ्वी। उस असत् ने मन बनाया कि अनेक हो जाऊँ। उक्त ब्राह्मण वचन से स्पष्ट हो जाता है कि प्रलयावस्था के समय में असत्, सत् और मनस् ये तीन तत्व विद्यमान थे, कहने का तात्पर्य यह है कि उस समय असत् रूप सत्ता के रूप में विद्यमान था तथा मनस् इच्छा या संकल्प रूप होने से असत् का गुण है ऋग्वेद में कहा गया है कि

सच्च परमे व्योमन्दक्षस्य जन्मन्नदितेरुपस्थे।

अग्निर्ह न: प्रथमजा ऋत्स्य पूर्व आयुनि वृषभश्च धेनु:।[181]

असत् और सत् को स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि ये दक्ष के जन्म के समय अदिति के गर्भ में विद्यमान थे और सृष्टि की अवस्था में सर्वप्रथम उत्पन्न होने वाला तत्व अग्नि था।

ऋग्वेद के ऋषियों के मंतव्य से यह प्रतीत होता है कि अदिति अर्थात् अखंड सत्ता के रूप में है एक असत् है दूसरा सत् इनमें असत् का प्रथम परिगणन का कारण है कि असत् सत् होते हुए भी सत् का मूल है या कह सकते है कि सत् का मूल स्वभाव असत् है, अर्थात् शून्य सदृश निराकार और निर्विकार असत् का धर्म है। इसके अतिरिक्त दूसरा कारण सत् अर्थात् व्याकृत रूप की अपेक्षा असत् अव्याकृत रूप असीमित है।

180 तैत्तिरीय संहिता 2/2/9/1

181 ऋग्वेद 10/90/4

आयुर्वेद और योग में मन का स्वरूप

आयुर्वेद एवं योगशास्त्र में मन के अस्तित्त्व पर विशेष महत्त्व दिया गया है। इससे सम्बन्धित महत्त्वपूर्ण एवं सार्थक सिद्धांत के माध्यम से आयुर्वेद में समस्त रोगों को दो भागों में विभाजित किया गया है, शारीरिक एवं मानसिक।

शारीरिक व्याधि में रोग का अधिष्ठान अथवा आधार शरीर को माना गया है तथा मानसिक रोग में मन को, परन्तु दोनों ही प्रकार के रोग में मन का एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। भौतिक एवं आध्यात्मिक क्रियाओं का नियंत्रण शरीर मानसिक तत्त्व के माध्यम से करता है एवं मानसिक क्रियाओं का नियंत्रण शरीर के माध्यम से किया जाता है। इस प्रकार दोनों का आपस में घनिष्ठ सम्बन्ध है इसीलिए कुछ शारीरिक रोगों की चिकित्सा के लिए आयुर्वेद में मानसिक उपायों पर विशेष बल दिया जाता है।

योग शास्त्र में मन का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है, योग का प्रमुख उद्देश्य है मन की विभिन्न प्रकार की वृत्तियों को अवरुद्ध करना। महर्षि पतंजलि ने योग सूत्र की प्रस्तावना में इस तथ्य पर विशेष बल दिया है। योग के अनेक सम्प्रदाय देखने को मिलते है जो अपने-अपने अनुयायियों के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार से यौगिक साधनों का विधान करते है, परन्तु समस्त सम्प्रदाय मन व उसकी अनेक प्रकार की वृत्तियों को नियंत्रण पर बल देते है क्योंकि मन और उसकी वृत्तियों को वश में करके ही कोई मनुष्य शाश्वत सत्य अथवा मोक्ष प्राप्ति का अधिकारी हो सकता है। योग में समस्त अंग तथा उनकी विभिन्न क्रियाएँ तथा मंत्रोच्चारण, आसन, प्राणायाम तथा संयमित भोजन को दृढ़ता पूर्वक सेवन करना, व्रत, उपवास आदि का पालन करना, इसी प्रकार के अन्य धार्मिक कृत्य की प्रधानता मनुष्य के मानसिक विकारों को दूर करते है। इन मानसिक विकारों को दूर करके तथा अपने पथ पर दृढ बन कर ही योगी शांति पूर्वक और सरलता से आध्यात्मिक उन्नति को प्राप्त कर सकता है।

मन के पर्याय एवं उनका प्रयोग

आयुर्वेद और योग से सम्बन्धित ग्रन्थों में मनस् शब्द का प्रयोग प्राय: मन के लिए प्रयुक्त हुआ है मन शब्द की व्युत्पत्ति मन् धातु से हुई है जिसका अर्थ वह उपकरण या साधन है जो किसी घटना अथवा विचार के लिए मुख्य रूप से उत्तरदायी है चित्त, चैत, हृदय, स्वांत तथा हृद् ये समस्त शब्द मनस् के संस्कृत पर्याय है प्रसंगानुसार इन सभी संस्कृत शब्दों का अपना अपना अर्थ है उदाहरणस्वरूप हृदय प्रदेश में जो मन का आश्रय स्थान है।

चित्त, मन, बुद्धि और अहंकार इन चार अंत:करणों को ग्रहण किया जाता है यह किसी भी घटना एवं तथ्य को ग्रहण करने के लिए ये उत्तरदायी होते है। इस प्रकार ये सभी पर्यायवाची शब्द मन के विभिन्न गुणों और उससे अलग अलग पहलुओं का वर्णन करते हैं।

मन का स्थान

आयुर्वेद में ऐसा माना जाता है कि मन का निवास स्थान हृदय और मस्तिष्क में है। हृदय और मस्तिष्क आपस में सम्बन्धित है तथा इनके कार्य भी एक दुसरे पर आधारित है। आयुर्वेद के ग्रंथों में इस तथ्य को अधिक महत्त्व प्रदान किया गया है कि मन हृदय में रहता हैं। परन्तु योग के ग्रंथों में हृदय तथा मस्तिष्क दोनों को ही मन का स्थान बतलाया गया है इसमें इडा (दायाँ अनुकम्पी स्रोत) पिंगला (बायाँ अनुकम्पी स्रोत) तथा सुषुम्ना मेरुदंड में स्थित है, जो चेतना के प्रवाह को धारण करता है।

इस तथ्य का आयुर्वेद एवं योग में विस्तार से वर्णन किया गया है कि प्रत्येक मनुष्य के अन्दर कुण्डलिनी शक्ति अथवा गुप्त शक्ति उसके अनुत्रिक प्रदेश अथवा रीढ़ की हड्डी का सबसे निम्न भाग में वह सुप्त अवस्था में एक कुंडली मारे सर्प की भांति रहता है। इस शक्ति को अनेक प्रकार की यौगिक क्रियाओं के माध्यम से ही जागृत किया जा सकता है और इसके विषय में ऐसा माना जाता है कि यह कुंडलिनी शक्ति जागृत हो जाती है तो मनुष्य के मन पर दबाव उत्पन्न करती है, इस दबाव के फलस्वरूप मन की शक्तियाँ जो प्राय: सुप्तावस्था में होती है वह क्रियाशील हो जाती है।

इस प्रकार योग के अनुसार हृदय मस्तिष्क तथा अनुकम्पी स्रोतों सहित मेरुदंड आदि सभी मन के निवास स्थान माने गये है।

मन के कार्य

मन के सर्वप्रमुख कार्य ज्ञानेन्द्रियों द्वारा एकत्रित किये गए है उत्तेजकों का ज्ञान प्राप्त करना तथा इस ज्ञान को अहंकार बुद्धि आदि तक पहुँचाना हैं। इस ज्ञान प्राप्ति की प्रतिक्रिया के रूप में मन यह ज्ञान कर्मेन्द्रियों तक पहुँचाता है, इसके परिणाम स्वरूप कर्मेन्द्रियाँ परावर्तन करती है, परिवर्तित क्रिया मनुष्य को सोचने, विचारने, कल्पना करने सतर्क रहने तथा निर्णय करने में सहायता करती है।

मन की परिभाषा

यदिन्द्रियाणामभिग्राहकं च मन इत्यभिधीयते[182]

अर्थात् जो इन्द्रियों को उनके विषयों को ग्रहण हेतु प्रेरित करता है तथा उसे मन कहते है। इस प्रकार विषयों से सम्पर्क करने हेतु इन्द्रियों को उत्तेजित कर उस विषय को इन्द्रियों के माध्यम से प्राप्त करने वाले को मन कहा जाता।

मन का लक्षण

१. लक्षणम मनसो ज्ञानस्याभावोभाव एव च।

सति ह्यात्मेन्द्रियार्थानां सन्निकर्षे न वर्तते।।

वैकृत्यान्मनसो ज्ञानं सान्निध्यातच्च वर्तते।[183]

२.आत्मेन्द्रियार्थसन्निकर्षे ज्ञानस्य भावोऽभावश्च मनसो लिंगम्।[184]

३. युगपज्ज्ञानानुत्पत्तिर्मनसो लिंगम्।[185]

४. मन्यते ज्ञायते अनेन इति मन:।[186]

182 चरक संहिता, शारीर स्थान 3/13

183 वही शारीर स्थान 1

184 वैशेषिक सूत्र 2/1/2

185 न्यायदर्शन 1/15-16

मन शब्द की व्युत्पत्ति

मन ज्ञाने धातु से मन शब्द बनता है।

'मनबोधे (दिवादि)मन्यतेज्ञायतेऽनेन इति मन:'।

अर्थात् जिसके द्वारा ज्ञान होता है अथवा जो ज्ञान का साधन होता है, उसे मन कहते हैं।

लक्षण

ज्ञान का होना या ज्ञान का न होना मन के अस्तित्व का लक्षण है। आत्मा का श्रोतादि इन्द्रियों के साथ तथा इन्द्रियादि का विषयों के साथ सम्बन्ध होते हुए भी कभी विषय का ज्ञान होता है तथा कभी विषय का ज्ञान नहीं होता है। इसका तात्पर्य यह है कि आत्मा इन्द्रिय व विषय के अतिरिक्त कोई ऐसा द्रव्य है, जो ज्ञान का कारण है जिसकी उपस्थिति में ज्ञान हो जाता है तथा उसकी अनुपस्थिति में ज्ञान नहीं हो पाता है। उस ज्ञान के साधन रूप द्रव्य को मन कहा जाता है। इसीलिये कहा गया है कि ज्ञान का होना या ज्ञान का न होना ही मन का लक्षण है।

मन के गुण

मन के दो गुण कहे गये हैं[187]-1 अणुत्व 2 एकत्व।

अर्थात् मन अणु रूप और एक होता है। मन आत्मा के समान सर्वदेह व्यापक नहीं होता है,बल्कि अणु रूप में होता है, क्योंकि अणु रूप होने के कारण वह एक ही समय में समस्त इन्द्रियों में संचार नहीं कर पाता है। आचार्य योगीन्द्रनाथ सेन ने मन का लक्षण ज्ञान का होना या न होना, इसके अणु रूप में होने के कारण ही स्वीकार किया है, क्योंकि यदि यह महान् या सर्वगत होता तो इसके द्वारा सर्वत्र वह सदैव ज्ञान प्राप्ति होती रहती परन्तु व्यवहार में ऐसा नहीं होता। इसके संयोग से ज्ञान प्राप्ति होती है, तथा अनुपस्थिति में ज्ञान नहीं होता है, अत: यह अणुरूप वाला होता है।

---

186 द्विवेदी. डॉ वी०के०, पदार्थ विज्ञान, सम्पादक लक्ष्मीधर द्विवेदी ,चौखम्भा कृष्णदास अकादमी , चतुर्थसंस्करण, वाराणसी : 2016

187 चरक संहिता शारीर स्थान 1/19

इसको और भी स्पष्ट करते हुए आगे कहते हैं कि एक ही समय समस्त इन्द्रियों में मन के व्याप्त होने पर और मन के अनेक होने पर अनेक इन्द्रियों के साथ संयोग होने के कारण एक ही साथ अनेक प्रकार का ज्ञान होने लगेगा, परन्तु इस तरह की प्रक्रिया नहीं होती है। अर्थात् एक ही समय अनेक प्रकार का ज्ञान नहीं होता है। इस युक्ति के आधार पर इस बात की सिद्धि होती है कि मन एक है तथा यह अणु रूप में होता है। मन एक ही होता है, परन्तु इसकी क्रिया अतिशीघ्र होती है अत: ऐसा प्रतीत होता है कि इस शरीर में मन अनेक होता है।

मन के विभिन्न नाम (पर्याय)

वसिष्ठ जी ने राम के प्रश्न करने पर कि मन क्या है ? यह जड़ अथवा चेतन है, इस प्रकार से पूछने पर वे बताते है कि मन न तो केवल जड़ है और न ही चेतन यह तो वास्तव में संसार दशा में मलिन हुई अजड़ दृष्टि चित्त ही मन शब्द से कही जाती हैं अर्थात् चेतन और जड़ का सम्मिश्रण रूप होने से मन चेतन और जड़ इनमें से अन्यतर नहीं है। परमार्थ रूप में मनन करता हुआ मन होता है उसके अनेक कर्मयुक्त नाम हैं। जिसका विस्तृत वर्णन योगवाशिष्ठ में किया गया है। जिस प्रकार एक ही व्यक्ति के कर्म के अनुसार अनेक नाम होते है, उसी प्रकार मन के कर्मानुसार अनेक नाम हैं-

मन-

गोवसकलकवंकदाचित्कम्पनात्मक।
उन्मेषरूपिणी नाना तदैवहिमनस्थिति:॥[188]

जब चैतन्य का संकल्प नामक कार्य विविध रूपों में होता है, तो उसे मन कहते हैं।

बुद्धि

भावान अनुसंधान यदा निश्चित्यसंस्थिता।
यट्षाप्रोच्यतेबुद्धिरियताग्रहणक्षमा ।।[189]

अर्थात् मन जब किसी अनुसंधान के बाद निश्चयात्मक निर्णय पर पहुंचता है, तो उसे बुद्धि कहते हैं।

188 योगवासिष्ठ उत्पत्ति प्रकरण 96/17
189 वही 96/18

अहंकार

इसके अन्दर जब अहंभाव आता है,तो अहंकार कहा जाता है

यदा मिथ्याभिमानेन सह कल्पयतिभवबन्धनी।
अहंकाराभिमानेनप्रोच्यतेभवबन् ।।[190]

चित्त

बिना किसी कारण के एक विषय से दूसरे विषय की ओर चिन्तन करने से इसको चित्त कहा जाता है।

इदंत्यतवेदमायातिबालवपेलवा यदा

विचार संपरित्यज्य तदा सा चित्तमुच्यते ।।[191]

कर्म

जब मन अपने अन्दर किसी कमी को अनुभव करता हुआ उसकी पूर्ति के लिये किसी विषय की ओर दौड़ता है,तो उसे कर्म कहते हैं।

यदा स्पन्दकधमत्वात्कयान्यशसिनि ।
आधावतिस्पन्दफलें तदा कर्मत्युदाहता ।।[192]

स्मृति

जब मन किसी पूर्वानुभूत विषय का ज्ञान करता है, तो इसे स्मृति कहा जाता है

पूर्वदृष्टमर्टवाप्राग्दृष्टमितिनिलयम्।
यदेवहांविधतेन्तस्तदास्मृतिदाहत ।।[193]

कल्पना

जब मन विचलित होकर किसी विशेष विषय में ध्यान लगाता है, तो उसे कल्पना कहते हैं।

काकतालीय योगेन त्यक्त वैकधन निश्चयं।

---

190 योग वासिष्ठ उत्पत्तिप्रकरण 96/19

191 वही 96/20

192 वही 96/21

193 वही 96/23

यदेहितं कल्पयति भावं तेनेह कल्पना।।[194]

वासना

जब मन अन्य कर्मों को भोगकर किसी विशेष विषय की इच्छा करता है, तो इसे वासना कहते हैं।

यदा पदार्थशक्तीनांसंयुक्तानामवाम्बर।
वसत्यस्तस्तमितान्हावासनेतितदोच्यते।।[195]

अविद्या

ज्ञान हो जाने के बाद इसके अस्तित्व का लोप हो जाता है। अत: इसे अविद्या कहा जाता है।

बोधादविद्यमानत्वाद विद्येत्युच्यतेबुधै : ।[196]

मल

आत्मज्ञान विनाश के लिये इसकी स्फुरणा होती हैं, इसकी विद्यमानता परमतत्व को तिरोहित करती है, अत: इसे मल कहते हैं।

स्फुरत्यात्मविनाशाय विस्मारयति तत्पदम् ।
मिथ्याविकल्पजालेन तन्मलं परिकल्पते ।।[197]

माया

सदसत्तानमत्याशुसत्तांवासत्वमंजसा ।
सत्तासतविकल्पोयंतेनमायेतिकथ्यो ।।[198]

यह मन परमतत्व को अपनी स्थिति से आवृत्त कर लेता है, अत: इसे माया कहा जाता है।

प्रकृति

सर्वस्य विश्वजालस्यपरमात्मन्यलक्षिते।
प्रकृतत्वेनभावानलोकेप्रकृतिरुच्यते।।[199]

---

194 योग वासिष्ठ उत्पत्तिप्रकरण 96/22
195 वही 96/24
196 वही 34/20
197 वही 96/26
198 वही 96/29
199 योगवासिष्ठ निर्वाण प्रकरण 96/28

अर्थात् संसार के समस्त अनुभव व ज्ञान के प्रति यह कारण है, अत: इसे प्रकृति कहते हैं।

जीव

जीव जीवन का लक्षण व चैतन्यता प्रकट करने वाला है। अत: इसे जीव कहा जाता है।

जीवनात्चेतनाजीवो जीव इत्येवकथ्यते।[200]

आतिवाहिक

अतिवाहिक देहोक्तया समुदाहियते बुधै:।[201]

यह बिना किसी प्रभाव के दूर तक जाता है, अत:इसे आतिवाहिक कहा जाता हैं।

इन्द्रिय

यह संयोग द्वारा इन्द्रियार्थों को आत्मा तक पहुंचाता है अत: इसे इन्द्रिय कहते हैं।

ब्रह्म

देहभावनया देहोघटभावनया घट:।
कैश्चिद्ब्रम्हेति कथित: स्मृत: कैश्चिद्विराडिति ।।[202]

यह अपना संसार अपने आप बनाता है, अत: इसे ब्रह्म, सनातन नारायण तथा ईश कहा जाता है।

मन बन्धन-मोक्ष का कारण

आयुर्वेद में मन का कर्म अहित विषयों से इन्द्रियों व अपने को निग्रह करना कहा गया है। रज व तम-ये दो मानसिक दोष हैं। रज व तम जब तक इसके साथ लगे रहते हैं तब तक यह आत्मा को भी अपने साथ युक्त रखकर बन्धन में रखता है तथा जब रज व तम से यह अपने को मुक्त कर आत्मा में अपने को स्थिर कर लेता है, तो मोक्ष को प्राप्त कर लेता है। मन स्वयं अपना निग्रह कर अर्थात् विषयों से अपने को मुक्त कर मोक्ष का मार्ग प्रशस्त करता है तथा राजसिक व तामसिक भावों से अपने को युक्त कर स्वयं को व आत्मा को बन्धन में रखता है। विवेक चूड़ामणि के कुछ श्लोक इस सम्बन्ध में दिये जा रहे हैं-

200 वही 50/87
201 वही 50/78
202 वही 50/17

वायुना नीयते मेध: पुनस्तेनैब नीयते।

मनसा कल्प्यते बन्धो मोक्षस्तेनैव कल्प्यते।।[203]

जिस प्रकार मेघ वायु के द्वारा आता है तथा वायु के द्वारा ही चला जाता है। उसी प्रकार बन्धन की कल्पना मन से होती है तथा मोक्ष की कल्पना भी मन से ही होती है।

देहादिसर्वविषये परिकल्य रागंबध्नाति तेन पुरुषम पशुवदुणेन।
वैरस्यमत्र विषवत्सु विधाय पश्चादेन विमोचयति तन्मन एव बन्धनात् ।।[204]

अर्थात् मन ही देहादि समस्त विषयों में आसक्ति की कल्पना करके उसके द्वारा पशु के समान पुरुष को बाँधता है और पुन:इन विषयों में विषवत् विरसता उत्पन्न कर पुरुष को बन्धन से मुक्त कराता है।

तस्मान् मन: कारणमस्य जन्तोर्बन्धस्य मोक्षस्य च वा विधाने।

बन्धस्य हेतुर्नलिनं रजोगुनै मोक्षस्य शुद्धं विरजस्तमस्कम् ।।[205]

अर्थात् इस जीव के बन्धन और मोक्ष के विधान में मन ही कारण है। रजोगुण के कारण मलिन मन बन्धन का कारण है, परन्तु रज व तम से रहित सात्विक मोक्ष का कारण मन होता है, अत:मोक्षार्थियों को विषयरूपी अरण्य क्षेत्र में विचरण करते हुए मनरूपी व्याघ्र से अपनी रक्षा करनी चाहिये।

मनोनाम व्याघ्र विषयारण्यभूमिषु

चरत्यत्र न गच्छन्तुसाधवो ये मुमुक्षव:।[206]

-------------------------*******************------------------

203 विवेक चूडामणि 174
204 वही 175
205 वही 176
206 वही 170

तृतीय अध्याय

पाश्चत्य मनोविज्ञान एवं भारतीय मनोविज्ञान का तुलनात्मक अध्ययन

3.1 पाश्चत्य मनोविज्ञान

3.2 प्राच्य एवं पाश्चात्य मनोविज्ञानों में समानता एवं भिन्नता

तृतीय अध्याय

पाश्चत्य मनोविज्ञान एवं भारतीय मनोविज्ञान का तुलनात्मक अध्ययन

मनोविज्ञान पद ग्रीक के दो शब्दों से मिलकर बना है। साइकी जिसका का अर्थ 'आत्मा' तथा लोगस का अर्थ 'विवेचना' करना होता है। अतः इस शाब्दिक अर्थ के अनुसार मनोविज्ञान को आत्मा का अध्ययन करने वाला विषय माना गया है। आरम्भिक ग्रीक दार्शनिकों में जैसे अरस्तू तथा प्लेटो ने मनोविज्ञान को आत्मा का विज्ञान कहा गया है।

3.1 पाश्चात्य मनोविज्ञान

17वीं शताब्दी के दार्शनिकों जैसे – लिविनिज, जानलॉक आदि ने इस शब्द का अधिक उपयुक्त अर्थ 'मन' से लगाया और इस तरह से इन लोगों ने मनोविज्ञान को मन के अध्ययन का विषय माना। परन्तु आत्मा या मन ये दोनों ही कुछ पद ऐसे थे जिनका स्वरूप अप्रेक्षणीय तथा अदर्शनीय था। अतः इन दोनों तरह की परिभाषाओं को वैज्ञानिक अध्ययन के लिए स्वीकार्य नहीं माना गया। इसके पश्चात् कुछ विद्वानों ने मनोविज्ञान को चेतना या चेतन अनुभूति का विज्ञान कहा। जिसमें विलियम वुण्ट तथा उनके शिष्य टिचेनर इस परिभाषा के प्रमुख समर्थक थे। परन्तु इस परिभाषा को भी वैज्ञानिक अध्ययन के लिए स्वीकार्य नहीं माना गया क्योंकि इसे वैज्ञानिक ढंग से प्रेक्षणीय करने एवं समझने में कोई विशेष मदद नहीं मिलती थी। विलियम वुण्ट को प्रयोगात्मक

मनोविज्ञान का जनक कहा जाता है क्योंकि इन्होंने लिपजिंग विश्वविद्यालय में 1879 में पहली मनोवैज्ञानिक प्रयोगशाला खोली थी।[207]

आधुनिक मनोवैज्ञानिकों द्वारा मनोविज्ञान को अधिक वैज्ञानिक एवं वस्तुनिष्ठ रूप से परिभाषित करने की कोशिश की गयी है। इन लोगों ने मनोविज्ञान को व्यवहार का अध्ययन का विज्ञान माना है। जे.बी. वाटसन ने सर्वप्रथम मनोविज्ञान को व्यवहार के अध्ययन का विज्ञान कहा। व्यवहार को एक ठोस एवं प्रेक्षणीय पहलू के रूप में परिभाषित किया गया। अतः यह आत्मा, मन तथा चेतना आदि से कुछ भिन्न था क्योंकि वे सभी कुछ ऐसे थे जो आत्मनिष्ठ थे तथा जिनका प्रेक्षण भी नहीं किया जा सकता था।

इसकी विषय-वस्तु व्यवहारात्मक प्रक्रियाएँ मानी गई जिसे सरलता से प्रेक्षण किया जा सकता है। सीखना, प्रत्यक्षण, हाव-भाव आदि जिनका वस्तुनिष्ठ अध्ययन संभव है, उसका ही अध्ययन मनोविज्ञान करता है। साथ ही साथ मनोविज्ञान उन मानसिक प्रक्रियाओं का भी अध्ययन करता है जिनका सीधे प्रेक्षण तो नहीं किया जाता है परन्तु उसके विषय में सरलता से व्यवहारात्मक एवं मनोवैज्ञानिक आँकड़ों के आधार पर अनुमान लगाया जा सकता है। इन तथ्यों को ध्यान में रखकर मनोविज्ञान की एक उत्तम परिभाषा सैनट्रोक के अनुसार- ''मनोविज्ञान, व्यवहार एवं मानसिक प्रक्रियाओं का वैज्ञानिक अध्ययन है।

बेरोन के अनुसार- ''मनोविज्ञान को संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं एवं व्यवहार के विज्ञान के रूप में उत्तम ढंग से परिभाषित किया जाता है।"[208]

सिस्सरेल्ली एवं मेअर के अनुसार- ''मनोविज्ञान, व्यवहार एवं मानसिक प्रक्रियाओं का वैज्ञानिक अध्ययन करता है।"[209]

207 आत्रेय. शान्ति प्रकाश, योग -मनोविज्ञान ,दी इन्टरनेशनलस्टैण्डर्डपब्लिकेशन्स, प्रथम संस्करण, वाराणसी : 1965
208 सामन्य मनोविज्ञान ,अरुणकुमार
209 सामन्य मनोविज्ञान ,अरुणकुमार

मनोविज्ञान मानव एवं पशु के व्यवहार एवं संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं का वैज्ञानिक अध्ययन करता है। ऐसे अध्ययन के पीछे उसके कुछ अदृश्य लक्ष्य होते हैं। मनोविज्ञान के मुख्य तीन निम्नांकित लक्ष्य हैं-

1. मापन एवं वर्णन
2. पूर्वानुमान एवं नियंत्रण
3. व्याख्या

मनोविज्ञान का सबसे प्रथम लक्ष्य प्रणाली के व्यवहार एवं संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं का वर्णन करना तथा फिर उसे मापन करना होता है। प्रमुख मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं जैसे - चिंता, सीखना, मनोवृत्ति, क्षमता, बुद्धि आदि का वर्णन करने के लिए पहले उसे मापना आवश्यक होता है। इसे मापने के लिए कई तरह के परीक्षण की आवश्यकता होती है। इसलिए मनोविज्ञान का एक मुख्य लक्ष्य मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं को मापने के लिए परीक्षण या विशेष प्रविधि का विकास करना है।[210]

किसी भी मनोवैज्ञानिक परीक्षण या प्रविधि में कम-से-कम दो गुणों का होना अनिवार्य है विश्वसनीयता तथा वैधता, विश्वसनीयता से तात्पर्य इस तथ्य से होता है कि बार-बार मापने से व्यक्ति के प्राप्तांक में कोई परिवर्तन नहीं आता है। वैधता से तात्पर्य इस बात से होता है कि परीक्षण वही माप रहा है जिसे मापने के लिए उसे बनाया गया है। मापने के बाद मनोवैज्ञानिक उस व्यवहार का वर्णन करते हैं। जैसे - बुद्धि परीक्षण द्वारा बुद्धि मापने पर यदि किसी व्यक्ति का बुद्धिलब्धि 150 आता है तो मनोवैज्ञानिक यह समझते हैं कि व्यक्ति तीव्र बुद्धि का है और वह विभिन्न परिस्थितियों में बुद्धिमत्तापूर्ण व्यवहार कर सकता है।[211]

मनोविज्ञान का दूसरा लक्ष्य व्यवहार के बारे में पूर्वकथन करने से होता है ताकि उसे ठीक ढंग से नियंत्रित किया जा सके। जहाँ तक पूर्वकथन का प्रश्न है, इसमें सफलता, मापन की सफलता पर

210 चिलविल. डॉ शोभाअग्रवाल, वेदों में सम्पूर्ण स्वास्थ्य तथा एकेश्वरवाद,जानवानि प्रकाशन प्राइवेट लिमटेड ,दिल्ली : 2013
211 चौबे. सरयुप्रसाद, मनोविज्ञान की ऐतिहासिक रुपरेखा, विनोद पुस्तकमन्दिर आगरा , सन् : 2008

निर्भर करता है। सामान्यतः मनोवैज्ञानिक व्यवहार के मापन के आधार पर ही यह पूर्वकथन करते हैं कि व्यक्ति अमुक परिस्थिति में क्या कर सकता है तथा कैसे कर सकता है? जैसे अगर हम किसी छात्र के सामान्य बौद्धिक स्तर का मापन करके उसके बारे में सही-सही जान लें तो हम स्कूल में उसके निष्पादन के बारे में पूर्वकथन आसानी से कर सकते हैं। जैसे व्यक्ति की अभिरुचि को मापकर मनोवैज्ञानिक यह पूर्वानुमान लगाते हैं।

व्यक्ति को किस तरह के कार्य में लगाना उत्तम होगा ताकि उसे अधिक से अधिक सफलता प्राप्त हो सके। पूर्वकथन तथा नियंत्रण साथ-साथ चलता है और मनोवैज्ञानिक जब भी किसी व्यवहार के बारे में पूर्वकथन करता है तो उसका उद्देश्य उस मनोविज्ञान मानसिक प्रक्रियाओं, अनुभवों तथा व्यक्त व अव्यक्त दोनों प्रकार के व्यवहारों का एक क्रमबद्ध तथा वैज्ञानिक अध्ययन है।

ज्ञान की किसी भी विद्या या शाखा को परिभाषित करना कठिन होता है। क्योंकि यह सर्वदा विकसित होता रहता है। गोचरों के द्वारा जिस सीमा तक अध्ययन किया जाता है उन्हें किसी एक परिभाषा में बांधा नहीं जा सकता है। यह बात मनोविज्ञान के क्षेत्र में और अधिक लागू होती है। मनोविज्ञान Psychology शब्द दो ग्रीक शब्दों के मेल से बना है जिसमें psyche अर्थात् आत्मा और logas अर्थात् विज्ञान अथवा एक विषय के अध्ययन से बना है।

अतः मनोविज्ञान आत्मा का अध्ययन था। परन्तु आधुनिक काल में इसका केंद्रीय बिन्दु बहुत अधिक बदल चुका है तथा यह अपने को एक वैज्ञानिक विद्याशाखा के रूप में स्थापित कर चुका है जो मानव अनुभव एवं व्यवहार में निहित प्रक्रियाओं की विवेचना करता है। इसमें जिन तथ्यों का अध्ययन किया जाता है।

उनका कार्य क्षेत्र कई स्तरों तक विस्तृत है , जैसे- वैयक्तिक, द्विजन; (दो व्यक्ति समूह) तथा संगठनात्मक। इनके जैविक तथा सामाजिक आधार भी होते हैं।

इसलिए स्वभावतः मनोविज्ञान अध्ययन की विधियाँ अलग-अलग होती हैं, क्योंकि वे उस तथ्य पर निर्भर करती हैं जिसका अध्ययन करना है। किसी भी विद्याशाखा की परिभाषा इस बात पर

निर्भर करती है कि वह किन बातों का अध्ययन करती है। वास्तव में वह कैसे अथवा किन विधियों का उपयोग करती है? इसी बात को ध्यान रखते हुए औपचारिक रूप से मनोविज्ञान को मानसिक प्रक्रियाओं, अनुभवों एवं विभिन्न संदर्भों में व्यवहारों का अध्ययन करने वाले विज्ञान के रूप में परिभाषित किया जाता है।[212] ऐसा करने के लिए मनेविज्ञान जैविक तथा सामाजिक विज्ञानों की विधियों का उपयोग व्यवस्थित ढंग से प्राप्त करने के लिए करता है। यह प्रदत्तों की अर्थवत्ता बताता है जिससे वे ज्ञान के रूप में संगठित किए जा सके। इन परिभाषा में प्रयुक्त तीन पदों- मानसिक प्रक्रियाएँ अनुभव एवं व्यवहार को समझा जा सकता है।

जब हम कहते हैं कि अनुभव, अनुभव करने वाले व्यक्ति के लिए आन्तरिक होता है तो हमारा आशय चेतना अथवा मानसिक प्रक्रियाओं से होता है। जब हम किसी बात को जानने या उसका स्मरण करने के लिए चिंतन करते हैं अथवा समस्या का समाधान करते हैं तो हम मानसिक प्रक्रियाओं का उपयोग करते है। मस्तिष्क की क्रियाओं के स्तर पर ये मानसिक प्रक्रियाएँ परिलक्षित होती हैं।

जब हम किसी गणितीय समस्या का समाधान करते हैं तो हमें दृष्टिकोण दिखता है कि मस्तिष्क किस प्रकार की तकनीकों का उपयोग करता है। हम मानसिक क्रियाओं एवं मस्तिष्क की क्रियाओं को एक नहीं मान सकते हैं, यद्यपि वे एक दूसरे पर आश्रित होती हैं। मानसिक क्रियाएँ एवं कोशिकीय क्रियाएँ एक दुसरे से अच्छादित दिखाई देती हैं परन्तु वे समरूप नहीं होती हैं। मस्तिष्क से भिन्न मन की कोई भौतिक संरचना अथवा अवस्थिति नहीं होती है। मन का आविर्भाव एवं विकास होता है। ऐसा तब होता है जब इस संसार में हमारी अंतःक्रियाएँ एवं अनुभव एक व्यवस्था के रूप में

212 आत्रेय. शान्ति प्रकाश, योग -मनोविज्ञान ,दी इन्टरनेशनलस्टैण्डर्डपब्लिकेशन्स, प्रथम संस्करण, वाराणसी : 1965

गतिमान होकर संगठित होती हैं जो विविध प्रकार की मानसिक प्रक्रियाओं के घटित होने के लिए उत्तरदायी होती हैं।[213]

मस्तिष्क की क्रियाएँ इस बात का संकेत देती हैं कि हमारा मन कैसे कार्य करता है। परन्तु हमारे अपने अनुभव एवं मानसिक प्रक्रियाओं की चेतना कोशिकीय अथवा मस्तिष्क की क्रियाओं से अधिक होती है। जब हम सोते हैं तब भी हमारी मानसिक क्रियाएँ चलती रहती हैं। हम स्वप्न देखते हैं और सूचनाएँ भी ग्रहण करते हैं। जैसे दरवाजे का खटखटाया जाना हम सोते समय भी जान जाते हैं कि कुछ क्रियायें हो रही है। अधिकांश मनोवैज्ञानिकों का मानना है कि हम सोते समय सीखते और स्मरण भी करते हैं। मनोवैज्ञानिक स्मरण करने, सीखने, जानने, प्रत्यक्षण करने एवं अनुभूतियों में रूचि लेते हैं। वे इन प्रक्रियाओं का अध्ययन यह जानने के लिए करते हैं कि हमारा मन कैसे कार्य करता है तथा हमारी सहायता करने के लिए वह क्या करते हैं जिससे हम अपनी मानसिक क्षमताओं के उपयोग एवं उसके अनुप्रयोग में सुधार कर सकें।

मनोवैज्ञानिक मनुष्य के अनुभवों का भी अध्ययन करते हैं। अनुभव स्वभाव से आत्मपरक होते हैं। हम प्रत्यक्षतः न तो दूसरों के अनुभव का प्रेक्षण कर सकते हैं और न ही उसके विषय में जान सकते हैं। अनुभव करने वाला व्यक्ति ही अपने अनुभवों को जान सकता है अथवा उसके प्रति सचेतन हो सकता है। इसलिए अनुभव हमारी चेतना में रचा-बसा रहता है। मनोवैज्ञानिकों ने मानव की उस पीड़ा पर ध्यान दिया है।

जो अंतिम साँसें गिन रहे रोगियों में दिखाई देती है अथवा उस मनोवैज्ञानिक पीड़ा पर जो शोकार्त होने पर होती है, साथ ही साथ धनात्मक अनुभूतियों का भी जो हम रोमांस करते समय

213 त्रिवेदी, मानसी शुक्ला ,वैदिक अनुष्ठनों का मनोवैज्ञान अनुशीलन , नाग पब्लिशर्स ,प्रथम संस्करण, दिल्ली : 2004

अनुभव करते हैं। कुछ गूढ़ अनुभव भी होते हैं जिन पर मनोवैज्ञानिक ध्यान देते हैं जैसे जब कोई योगी ध्यान की स्थिति में होता है तो वह चेतना के एक भिन्न धरातल पर पहुँचता है।[214]

जब एक नवीन अनुभव को उत्पन्न करता है अथवा जब कोई नशा करने वाला किसी नशीली दवा का सेवन हवा में उड़ने के लिए करता है यद्यपि ऐसी दवाइयाँ हानिकारक होती हैं। अनुभव अनुभवकर्ता की आंतरिक एवं बाह्य दशाओं से प्रभावित होती हैं। यदि गर्मी में किसी दिन आप भीड़ वाली बस में यात्रा करते हैं, तो आपको वैसी असुविधा की अनुभूति नहीं होती है क्योंकि आप अपने मित्रों के साथ पिकनिक के लिए जा रहे होते हैं। इस प्रकार, अनुभव के स्वरूप को आंतरिक एवं बाह्य दशाओं के जटिल परिदृश्य का विश्लेषण करके समझा जा सकता है।

व्यवहार

हमारी क्रियायें जिसमें हम संलग्न होते हैं, उसकी अनुक्रियाएँ अथवा प्रतिक्रियाएँ होती हैं। जब कोई वस्तु आपकी तरफ आती है तो पलकें सामान्य प्रतिवर्त क्रिया में खुलती-बंद होती हैं। आप परीक्षा देते समय यह अनुभव कर सकते हैं कि आपका हृदय धड़कता है। आप सुनिश्चित करते हैं कि आप एक चलचित्र विशेष अपने मित्र के साथ देखेंगे। व्यवहार, सामान्य अथवा जटिल कम समय तक अथवा अधिक तक बना रहने वाला हो सकता है। कुछ व्यवहार प्रकट होते हैं। एक प्रेक्षक इन्हें बाह्य जगत् में देख सकता है अथवा अनुभव कर सकता है।

कुछ आंतरिक या अप्रकट होते हैं। शतरंज का खेल खेलते समय जब आप कठिन परिस्थिति में पड़ते हैं तो आपको अपने हाथ की मांसपेशियाँ फड़कने जैसी लगती हैं जो कि एक खास चाल चल सकें। समस्त व्यवहार, प्रकट एवं अप्रकट, वातावरण के कुछ उद्दीपकों अथवा आंतरिक धरातल पर होने वाले परिवर्तनों द्वारा त्वरित रूप से संचालित होने से सम्बद्ध होता हैं। जैसे आप एक बाघ देखते हैं और दौड़ते हैं अथवा सोचते हैं कि बाघ है और यहाँ से भाग जाना चाहिए। कुछ

214 वैदिक विज्ञान, सम्पादक –डॉ दयानंद भार्गव, प्रथम संस्करण, राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर : १९९६

मनोवज्ञैानिक व्यवहार के उद्दीपक एवं अनुक्रिया के मध्य साहचर्य के रूप में अध्ययन करते हैं। उद्दीपक एवं अनुक्रिया दोनों ही आंतरिक अथवा बाह्य हो सकती हैं।

मनोविज्ञान की परिभाषा

पाश्चात्य विद्वानों के द्वारा मनोविज्ञान को विभिन्न विद्वानों के द्वारा अपने-अपने तरीके से परिभाषित करने का प्रयास किया है जो इस प्रकार है –

मनोवैज्ञानिक वुडवर्थ के शब्दों में कहा जा सकता है कि “सबसे पहले मनोविज्ञान ने अपनी आत्मा का त्याग किया, फिर उसने मन का त्याग किया, उसके बाद चेतना का का त्याग किया अब वह व्यवहार की विधि को त्याग करता है।”[215]

वाटसन के अनुसार, “मनोविज्ञान, व्यवहार का निश्चित या शुद्ध विज्ञान है।”[216]

वुडवर्थ के अनुसार, “मनोविज्ञान, वातावरण के सम्बन्ध में व्यक्ति क्रियाओं का वैज्ञानिक अध्ययन है।”[217]

बेरोन के अनुसार –“मनोविज्ञान संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं एवं व्यवहारों के विज्ञान के रूप में उत्तम ढंग से परिभाषित किया जाता हैं।”[218]

सिस्सरेल्ली एवं मेयर के अनुसार “मनोविज्ञान व्यवहार एवं मानसिक प्रक्रियाओं का वैज्ञानिक अध्ययन करता है।”[219]

215 वैदिक अनुष्ठानों का मनोवैज्ञानिक अनुशीलन
216 वही
217 वही
218 वही
219 वैदिक अनुष्ठानों का मनोवैज्ञानिक अनुशीलन

स्किनर के अनुसार, "मनोविज्ञान, व्यवहार और अनुभव का विज्ञान है।"[220]

मनोविज्ञान का इतिहास

मनोविज्ञान को 'आत्मा के अध्ययन' से सम्बद्ध विषय भी माना जाता है। आधुनिक विद्याशाखा के रूप में मनोविज्ञान, जो पाश्चात्य विकास से एक बड़ी सीमा तक प्रभावित है, उसका इतिहास बहुत लघु है। इसका उद्भव मनोवैज्ञानिक सार्थकता के प्रश्नों से सम्बद्ध प्राचीन दर्शनशास्त्र से हुआ है। मनोविज्ञान के इतिहास को मूलतः दो भागों में बाँटा जा सकता है।

1. पूर्व वैज्ञानिक काल 2. वैज्ञानिक काल

पूर्व वैज्ञानिक काल की शुरुआत ग्रीक दार्शनिकों जैसे- प्लेटो, अरस्तु, हिपोक्रेट्स आदि के अध्ययनों एवं विचारों से प्रारंभ होकर 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध तक विशेषकर 1878 तक माना जाता है। इस काल में हिपोक्रेट्स ने 400 बी. सी. में शरीर-गठन प्रकार का सिद्धान्त दिया था। जिसका अत्यधिक प्रभाव आने वाले मनोवैज्ञानिकों पर पड़ा और शेल्डन ने बाद में चलकर व्यक्तित्व के वर्गीकरण के एक विशेष सिद्धांत जिसे 'सोमैटोटाईप सिद्धांत' कहा गया, का निर्माण हिपोक्रेटस के विचारों से प्रभावित होकर किया।

ग्रीक दार्शनिक जैसे अगस्टाईन तथा थोमस का विचार था कि मन तथा शरीर दोनों दो वस्तुएँ हैं और इन दोनों में किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं होता है। परन्तु देकार्ते, लिबनिज तथा स्पिनोजा आदि ने बतलाया कि वास्तव में मन और शरीर दोनों ही एक-दूसरे से सम्बन्धित हैं और एक-दूसरे को प्रभावित करते हैं।[221]

220 वैदिक अनुष्ठानों का मनोवैज्ञानिक अनुशीलन
221 आत्रेय. शान्ति प्रकाश, योग -मनोविज्ञान , दी इन्टरनेशनलस्टैण्डर्डपब्लिकेशन्स, प्रथम संस्करण, वाराणसी : 1965

ग्रीक दार्शनिक देकार्ते का मत था, प्रत्येक व्यक्ति में जन्म से ही कुछ विशेष विचार होते हैं। परन्तु अन्य दार्शनिक जैसे लॉक का मत था कि व्यक्ति जन्म के समय 'टेबूला रासा' होता है अर्थात् उसका मस्तिष्क एक कोरे कागज के समान होता है और बाद में उसमें नये-नये अनुभवों से नये-नये विचार उत्पन्न होते हैं। बाद में इस वाद-विवाद द्वारा एक नये संप्रत्यय का जन्म हुआ जिसे मूल प्रवृत्ति की संज्ञा दी गयी और ऐसा समझा जाने लगा कि प्रत्येक व्यवहार की व्याख्या इस मूलप्रवृत्ति के रूप में ही हो सकती है।

रूसो जैसे दार्शनिकों का कहना था कि मनुष्य जन्म से अच्छे स्वभाव का होता है परन्तु समाज के कटु अनुभव उसके स्वभाव को बुरा बना देते है। दूसरी तरफ, स्पेन्सर जैसे दार्शनिक का मत था कि मनुष्य में जन्म से ही स्वार्थता, आक्रमणशीलता आदि गुण मौजूद होते हैं जो समाज द्वारा नियंत्रित कर दिये जाते हैं। फलतः व्यक्ति का स्वभाव असामाजिक से सामाजिक हो जाता है।[222]

19वीं शताब्दी के प्रारम्भ में दो प्रमुख क्षेत्रों में जो अध्ययन किया गया उसका आधुनिक मनोविज्ञान पर सबसे गहरा प्रभाव पड़ा। पहला क्षेत्र दर्शनशास्त्र का था, जिसमें ब्रिटिश दार्शनिकों जैसे- जेम्स मिल और जान स्टुअर्ट मिल का योगदान था जिसमें लोग चेतना तथा उसमें उत्पन्न विचारों का अध्ययन करते थे तथा दूसरा क्षेत्र भौतिक तथा जैविक विज्ञान का था जिसमें ज्ञानेन्द्रियों के कार्य के अध्ययन पर अधिक बल दिया गया। इस क्षेत्र में वेबर, ए फेकनर आदि का योगदान अधिक महत्वपूर्ण था।

मनोविज्ञान का वैज्ञानिक काल 1879 से प्रारम्भ हुआ है।[223] इसी वर्ष विलियम वुण्ट ने जर्मनी के लिपजिंग विश्वविद्यालय में मनोविज्ञान की पहली प्रयोगशाला खोली थी। वुण्ट सचेतन अनुभव के अध्ययन में रुचि ले रहे थे और मन के अवयवों अथवा निर्माण की इकाइयों का विश्लेषण

222 वैदिक विज्ञान, सम्पादक –डॉ दयानंद भार्गव, प्रथम संस्करण, राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर : 1996

223 आत्रेय. शान्ति प्रकाश, योग -मनोविज्ञान , दी इन्टरनेशनलस्टैण्डर्डपब्लिकेशन्स, प्रथम संस्करण, वाराणसी : 1965

करना चाहते थे। वुण्ट के समय में मनोवैज्ञानिक अंतर्निरीक्षण द्वारा मन की संरचना का विश्लेषण कर रहे थे इसलिए उन्हें संरचनावादी कहा गया । अंतर्निरीक्षण एक प्रक्रिया थी जिसमें प्रयोज्यों से मनोवैज्ञानिक प्रयोग में कहा गया था कि वे अपनी मानसिक प्रक्रियाओं अथवा अनुभवों का विस्तार से वर्णन करें।

मनोविज्ञान का विकास विभिन्न 'स्कूल' में कैसे हुआ और उन स्कूल पर वुन्ट के मनोविज्ञान का क्या प्रभाव पड़ा। मनोविज्ञान के ऐसे पाँच प्रमुख स्कूल हैं जिनका वर्णन निम्नांकित है-

संरचनावाद

संरचनावाद, जिसको अन्तर्निरीक्षणवाद तथा अस्तित्वाद के नाम से भी जाना जाता है। संरचनावाद स्कूल को विल्हेल्म वुण्ट के शिष्य टिचेनर द्वारा अमेरिका के कोर्नेल विश्वविद्यालय में 1892 में प्रारंभ किया गया।[224] संरचनावाद के अनुसार मनोविज्ञान की विषय-वस्तु चेतन अनुभूति है। टिचेनर ने चेतना तथा मन में अन्तर किया। चेतना से उनका तात्पर्य उन सभी अनुभवों से था जो व्यक्ति में एक दिये हुए क्षण में उपस्थित होता है, जबकि मन से तात्पर्य उन सभी अनुभवों से है जो व्यक्ति में जन्म से ही मौजूद होते हैं। टिचेनर के अनुसार चेतना के तीन तत्व होते हैं -१. संवेदन २. भाव या अनुराग तथा ३. प्रतिमा या प्रतिबिम्ब। टिचेनर ने अन्तर्निरीक्षण को मनोविज्ञान की प्रमुख विधि माना है।

प्रकार्यवाद

प्रकार्यवाद की स्थापना अनौपचारिक ढंग से विलियमजेम्स ने 1890 में अपनी एक पुस्तक लिखकर जिसका शीर्षक 'प्रिंसिपुल्स आफ साइकोलाजी' कर दी थी। उनका मानना था कि

224 आत्रेय. शान्ति प्रकाश, योग -मनोविज्ञान , दी इन्टरनेशनलस्टैण्डर्डपब्लिकेशन्स, प्रथम संस्करण, वाराणसी : 1965

मनोविज्ञान का सम्बन्ध इस बात से है कि चेतना क्यों और कैसे कार्य करते हैं न कि सिर्फ इस बात से है कि चेतना के कौन-कौन से तत्व हैं? अतः जेम्स के अनुसार मनोविज्ञान की विषय-वस्तु तो चेतना अवश्य थी, परन्तु उन्होंने इसमें चेतना की कार्यात्मक उपयोगिता पर अधिक बल डाला था।

प्रकार्यवाद की औपचारिक स्थापना के संस्थापक के रूप में डिवी, एंजिल तथा कार्क को जाना जाता है। प्रकार्यवाद के अनुसार मनोविज्ञान का संबंध मानसिक प्रक्रियाओं या कार्य के अध्ययन से होता है न कि चेतना के तत्वों के अध्ययन से होता है।

व्यवहारवाद

व्यवहारवाद की स्थापना वाटसन द्वारा 1913 में की गई। उनका मानना था कि मनोविज्ञान एक वस्तुनिष्ठ तथा प्रयोगात्मक मनोविज्ञान है। अतः इसका विषय सिर्फ व्यवहार हो सकता है चेतना नहीं क्योंकि सिर्फ व्यवहार का ही अध्ययन वस्तुनिष्ठ एवं प्रयोगात्मक ढंग से किया जा सकता है। वाटसन के व्यवहारवाद ने उद्दीपक अनुक्रिया को जन्म दिया। वाटसन ने अन्तर्निरीक्षण को मनोविज्ञान की विधि के रूप में अस्वीकृत किया और उन्होंने मनोविज्ञान की चार विधियाँ बताई, जैसे- प्रेक्षण, अनुबन्धन, परीक्षण, शाब्दिक रिपोर्ट।

गेस्टाल्ट मनोविज्ञान

गेस्टाल्ट स्कूल की स्थापना मैक्स बरदाईमर ने 1912 में की। कोहलर तथा कौफ्का इस स्कूल के सह-संस्थापक है गेस्टाल्ट एक जर्मन शब्द है जिसका हिन्दी में रुपान्तर 'आकृति' आकार तथा 'समाकृति' किया गया है। गेस्टाल्ट स्कूल का मानना था कि मनोविज्ञान मानसिक क्रियाओं के संगठन का विज्ञान है। [225]

225 वैदिक अनुष्ठानों का मनोवैज्ञानिक अनुशीलन

मनोविश्लेषण

मनोविश्लेषण को एक स्कूल के रूप में सिगमंड फ्रायड ने स्थापित किया। फ्रायड के अचेतन का सिद्धान्त अत्यधिक महत्वपूर्ण माना गया है और उन्होंने सभी तरह के असामान्य व्यवहारों का कारण इसी अचेतन में होते दिखलाया। अचेतन के विषय में अध्ययन करने की अनेक विधियाँ बतलाई जिनमें मुक्त साहचर्य विधि सम्मोहन तथा स्वप्न की व्याख्या सम्मिलित हैं।

भारत में मनोविज्ञान का विकास

भारतीय दार्शनिक परम्परा इस बात की धनी रही है कि वह मानसिक प्रक्रियाओं तथा मानव चेतना, स्व, मन-शरीर के संबंध तथा अनेक मानसिक प्रकार्य; जैसे - संज्ञान, प्रत्यक्षण, भ्रम,अवधान तथा तर्कना आदि पर उनकी झलक के संबंध में केन्द्रित रही है। भारत में आधुनिक मनोविज्ञान के विकास को भारतीय परम्परा की गहरी दार्शनिक जड़े भी प्रभावित नहीं कर सकी हैं। भारतीय मनोविज्ञान का आधुनिक काल कलकत्ता विश्वविद्यालय के दर्शनशास्त्र विभाग में 1915 में प्रारंभ हुआ जहाँ प्रायोगिक मनोविज्ञान का प्रथम पाठ्यक्रम आरंभ किया गया तथा प्रथम मनोविज्ञान प्रयोगशाला स्थापित हुई।

कलकत्ता विश्वविद्यालय ने 1916 में प्रथम मनोविज्ञान विभाग तथा 1938 में अनुप्रयुक्त मनोविज्ञान का विभाग प्रारंभ किया। प्रोफेसर एन.एन सेन गुप्ता, जो वुण्ट की प्रायोगिक परम्परा में अमेरिका से प्रशिक्षण प्राप्त थे, और उनसे बहुत प्रभावित थे। 1922 में प्रोफेसर गिरिन्द्रशेखर बोस मनोविज्ञान विभाग के अध्यक्ष बने जो फ्रायड के मनोविश्लेषण में प्रशिक्षण प्राप्त थे।[226]

प्रोफेसर बोस ने 'इंडियन साइकोएनालिटिक सोसाइटी की स्थापना 1922 में की थी। 1924 में 'इंडियन साइकोलाजिकल एसोसिएशन की स्थापना की गई। 1938 में कलकत्ता विश्वविद्यालय में

226 वैदिक अनुष्ठानों का मनोवैज्ञानिक अनुशीलन

मनोविज्ञान विभाग में एक अनुप्रयुक्त मनोविज्ञान की शाखा भी खोली गई। इसके पश्चात् मैसूर विश्वविद्यालय एवं पटना विश्वविद्यालय में मनोविज्ञान के अध्यापन एवं अनुसंधान के प्रारंभिक केन्द्र प्रारम्भ हुए। 1960 के दशक के दौरान भारत में कई विश्वविद्यालयों में मनोविज्ञान विभाग की स्थापना की गई।

विश्वविद्यालय के प्रांगण से हटकर मनोविज्ञान विभिन्न तरह के संस्थानों जैसे प्रबंधन संस्थान, शिक्षा संस्थान, रक्षा सेवा आदि में भी काफी लोकप्रिय हुआ और भारतीय मनोवैज्ञानिकों की सक्रियता इसमें अत्यधिक रही है। 1986 में दुर्गानन्द सिन्हा ने अपनी पुस्तक 'साइकोलाजी इन ए थर्डवल्ड कन्ट्री: दि इंडियन एक्सपीरियन्स' में भारत में सामाजिक विज्ञान के रूप में चार चरणों में आधुनिक मनोविज्ञान के इतिहास को खोजा है।

अतः भारत में मनोविज्ञान का अनुप्रयोग अनेक व्यावसायिक क्षेत्रों में किया जा रहा है।

मनोविज्ञान एवं अन्य विषय

कोई भी विद्या शाखा, जो लोगों का अध्ययन करती है, वह निश्चित रूप से मनोविज्ञान के ज्ञान की सार्थकता को मानेगी। इसी प्रकार मनोवैज्ञानिक भी मानव व्यवहार को समझने में अन्य विद्याशाखाओं की सार्थकता को स्वीकार करते हैं। अनुसंधानकर्ताओं एवं विज्ञान, सामाजिक विज्ञान एवं मानविकी में विद्वानों ने एक विद्याशाखा के रूप में मनोविज्ञान की सार्थकता के अनुभव किए।

मस्तिष्क एवं व्यवहार का अध्ययन करने में मनोविज्ञान अपने ज्ञान को तंत्रिका विज्ञान, शरीर क्रिया विज्ञान, जीव-विज्ञान, आयुर्विज्ञान तथा कम्प्यूटर विज्ञान के साथ बाँटता है। सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ में मानव व्यवहार को समझने के लिए (उसका अर्थ, संवृद्धि, तथा विकास) मनोविज्ञान अपने ज्ञान को मानव विज्ञान, समाजशास्त्र, समाजकार्य विज्ञान, राजनीतिविज्ञान एवं अर्थशास्त्र के साथ भी मिलकर चल रहा है। यही कारण है कि मनोविज्ञान में अंतर्विषयक उपागम का

जन्म हुआ है जिसका सहर्ष स्वागत सभी मनोवैज्ञानिकों के द्वारा किया गया है। कुछ प्रमुख विद्याशाखाएँ जो मनोविज्ञान से जुड़ी हैं उनकी चर्चा नीचे की जा रही हैं।

दर्शन शास्त्र

भारतीय दार्शनिक ग्रन्थों में इन्द्रियों और उनकी क्रियायों के विषय में विस्तारपूर्वक विश्लेषण किया गया हैं। सांख्य दर्शन के अनुसार प्रकृति से महत्, महत् से अहंकार, अहंकार से मनस्, पांच कर्मेन्द्रियाँ और पञ्च ज्ञानेन्द्रियाँ तथा पञ्चतन्मात्रा विकसित होती है। ईश्वरकृष्ण के अनुसार मन में सत्व गुण की प्रधानता होती है क्योंकि मन के साथ ग्यारह इन्द्रियाँ सत्व की अधिकता के कारण उत्पन्न होती है तथा पञ्चतन्मात्रा तमस् की अधिकता के कारण उत्पन्न होती है।[227]

मनोविज्ञान आदि काल से ही मानव जीवन से जुड़ा हुआ है मानव ने अपने जीवन के प्रारम्भ से ही स्वयं तथा अपने आस-पास की वस्तुओं के विषय में चिंतन करना प्रारम्भ कर दिया था इसी के परिणाम स्वरुप उसमें सदैव संसार के विषय में ज्ञान प्राप्त करने की प्रेरणा अभिलाषा व उत्सुकता रही है तथा भारत के कुछ प्राचीनतम ग्रन्थ ऐसे ही विचारों से ओतप्रोत है कि वहाँ तक कोई पाश्चात्य विद्वान् पहुँच नहीं सका इसी का परिणाम है कि हमारी संस्कृति विश्व की प्राचीनतम संस्कृति होने के कारण सम्पूर्ण विश्व के द्वारा सर्वदा अनुकरणीय रही है, ऐसी प्राचीन संस्कृति के ग्रंथों में मनोवैज्ञानिक तथ्यों का पाया जाना सदैव सम्पूर्ण विश्व को लाभान्वित करता रहा है।

कहा जाता है कि मनोविज्ञान का जनक दर्शनशास्त्र है। उन्नीसवीं सदी के अंत तक कुछ बातें जो समसामयिक मनोविज्ञान से सम्बन्धित है, जैसे मन का स्वरुप क्या है? अथवा मनुष्य अपनी अभिप्रेरणाओं एवं संवेगों के विषय में कैसे जानता है? वे बातें दार्शनिकों की रुचि की थी। उन्नीसवीं सदी में आगे चलकर वुण्ट एवं अन्य मनोवैज्ञानिकों ने इन प्रश्नों के लिए प्रायोगिक उपागम का उपयोग किया तथा समसामयिक मनोविज्ञान का उदय हुआ। विज्ञान के रूप में मनोविज्ञान के उदय के बाद भी

227 वैदिक अनुष्ठानों का मनोवैज्ञानिक अनुशीलन

यह दर्शनशास्त्र से बहुत कुछ लेता है, विशेषकर ज्ञान की विधि तथा मानव स्वभाव के विविध क्षेत्रों से सम्बन्धित बातें।

सहभागी सामाजिक विज्ञान विद्या शाखाओं के रूप में इन तीनों ने मनोविज्ञान से बहुत कुछ प्राप्त किया है तथा उसको भी समृद्ध किया है। मनोविज्ञान ने उपभोक्ता व्यवहार तथा बचत व्यवहार को समझने की उत्तम पृष्ठभूमि तैयार की है जिसका उपयोग कर अर्थशास्त्रीयों ने इन क्षेत्रों में व्यक्ति के आर्थिक व्यवहार के बारे में उत्तम निर्णयन एवं नियंत्रण पर अधिक सफलता प्राप्त की है। आर्थिक व्यवहार में सहयोग जैसे तत्वों की सराहनीय भूमिका थामस द्वारा की गई जिसके लिए उन्हें अर्थशास्त्र के क्षेत्र में उल्लेखनीय योगदान के लिये 2005 में नोबेल पुरस्कार भी प्रदान किया गया। अर्थशास्त्र की तरह, राजनीति विज्ञान भी मनोविज्ञान से बहुत कुछ ग्रहण करता है | विशेष रूप से शक्ति एवं प्रभुत्व के उपयोग, राजनैतिक द्वन्द्व के स्वरूप एवं उनके समाधान तथा मतदान आचरण को समझने में सहायक सिद्ध होते हैं।

मनोविज्ञान की उपयोगिता

मनोविज्ञान मानसिक शक्तियों के नैसर्गिक इच्छाओं तथा उनके विकास का ही विवरण नहीं देता ,इसके अतिरिक्त सहज व्यवहार के उन परिवर्तनों का भी विस्तृत वर्णन रहता है जो भौतिक या सामाजिक संपर्क से व्यक्ति में साधारणत: आ जाते है।

मनोविज्ञान में प्राणियों का अध्ययन किया जाता है। प्राणी कैसे प्रत्यक्षण करता है, सीखता है, सोचता है, याद करता है समझता है तथा साथ-ही-साथ अपने पर्यावरण तथा वस्तुओं एवं घटनाओं के साथ किस तरह से अन्तःक्रियाएँ करता हैं इनका अध्ययन मनोविज्ञान में किया जाता है। इसके अलावा मनोवैज्ञानिक कुछ इन प्रश्नों का भी उत्तर ढूँढ़ने का प्रयास करते हैं। व्यक्ति कैसे किसी विषय को आसानी से याद कर लेता है तथा वहीं किसी दूसरे विषय को काफी प्रयासों में भी नहीं याद कर पाता है ? व्यक्ति में चिन्तन का विकास कैसे होता है? भिन्न-भिन्न व्यक्तियों का प्रत्यक्षण भिन्न

क्यों होता है? व्यक्तित्व का विकास कैसे होता है, आदि-आदि। इस उत्सुकता एवं जिज्ञासा के कारण ही हम ये सोचने के लिये भी बाध्य हो जाते हैं कि किस प्रकार लोग एक दूसरे से बुद्धि, अभिक्षमता तथा स्वभाव में भिन्न है।[228]

वे कभी प्रसन्न तो कभी दुःखी क्यों होते हैं? किस प्रकार वे एक दूसरे के मित्र या शत्रु हो जाते हैं? कुछ लोग किसी कार्य को जल्दी सीख लेते हैं, जबकि दूसरे उसी कार्य को सीखने में अपेक्षाकृत अधिक समय क्यों लगाते हैं? इन प्रश्नों का उत्तर एक अनुभवहीन व्यक्ति भी दे सकता है, तथा वह व्यक्ति जिसे मनोविज्ञान का ज्ञान है। एक अनुभवहीन व्यक्ति सामान्य ज्ञान के आधार पर इन प्रश्नों का उत्तर देता है, जबकि एक मनोवैज्ञानिक इन क्रियाओं के पीछे छिपे कारणों का क्रमबद्ध रूप से अध्ययन करने के बाद इन प्रश्नों के वैज्ञानिक उत्तर देता है।[229]

पाश्चात्य मनोविज्ञान का अध्ययन करने से ज्ञान प्राप्त होता कि इन्हें इसका ज्ञान कुछ अन्य समय पूर्व प्राप्त हुआ था क्योंकि प्राप्त जानकारी के अनुसार सत्रहवीं शताब्दी तक इसका कहीं उल्लेख नहीं प्राप्त होता है।

सर्वप्रथम 1879 में वुण्ट ने लिपजिंग विश्वविद्यालय में (जर्मनी) एक प्रयोगशाला को स्थापित किया और उन्हें मनोविज्ञान को एक स्वतन्त्र विज्ञान रूपी वृक्ष को सिंचने का श्रेय दिया जाता है। इसीलिए वुण्ट को आधुनिक प्रयोगत्मक मनोविज्ञान का जन्मदाता कहा जाता है। 19वीं शताब्दी में जर्मन मनोवैज्ञानिकों के माध्यम से मनोविज्ञान का वह महान वृक्ष तैयार किया गया जिसका वुण्ट ने वृक्षारोपण किया था और जर्मन मनोवैज्ञानिक ने विश्व के प्रत्येक कोने-कोने में अपनी प्रयोगशाला को स्थापित किया, किन्तु इस प्रयोगशाला में मन की चेतन अवस्था का अध्ययन होता रहा उस समय अनेक मनोवैज्ञानिक सम्प्रदाय उत्पन्न हुए।

---

228 माथुर. एस एस ,सामान्य मनोविज्ञान, विनोद पुस्तक मन्दिर, द्वितीय संस्करण , आगरा : 1966
229 रूपम . डॉ ,योग मनोविज्ञान.मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स , दिल्ली : 2017

सभी ने किसी न किसी प्रकार से मन के चेतन अवस्था का अध्ययन किया। परन्तु मन के अचेतन तथा अतिचेतन मन की अवस्था से पाश्चत्य लोग अनभिज्ञ रहे क्योंकि मन के सभी परीक्षण चेतन मन पर आश्रित होते है। व्यवहारवादी मनोवैज्ञानिक के नाम से प्रसिद्ध वाटसन आदि चिन्तकों ने मन की बाह्य अवस्था का अवलोकन किया और सभी के सामने उसे उपस्थित किया तथा जो कुछ है वह यही व्यवहारिक ही है, ऐसा सिद्ध किया। परन्तु उनको चिकित्सा शास्त्र में औषधियों के माध्यम से विभिन्न रोगों की चिकित्सा करने में सफलता नहीं मिली तो उन्होंने उसको अन्त तक जानने का प्रयास किया कि कैसे विभिन्न रोगों की चिकित्सा सम्भव है।

किन्तु कुछ समय पूर्व में पाश्चात्य के प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक फ्रायड का ध्यान अचेतन मन की ओर गया जिन्होने अचेतन मन के विषय में बहुत कुछ ज्ञान प्राप्त किया ज्ञान प्राप्ति के पश्चात् उन्होंने बताया कि यदि मन का विभाजन किया जाए तो चेतन मन की अवस्था का विभाजन कम महत्वपूर्ण स्थान रखता है। जो क्रियाएँ करते है वह सम्पूर्ण जीवन उस अचेतन मन पर आधारित है।

3.2 भारतीय एवं पाश्चात्य मनोविज्ञान में समानता एवं विभिन्नता

पाश्चात्य मनोविज्ञान वर्तमान समय में विकसित एवं प्रयोगात्मक रूप में है। तथा प्रयोगात्मक पद्धति के द्वारा अत्यधिक उन्नत हो चुका है तथा विकासोन्मुख स्थिति में भी हमें पाश्चात्य मनोविज्ञान के माध्यम से मन की शक्तियों का ज्ञान अभी तक नहीं हो पाया। पाश्चात्य मनोविज्ञान के इतिहास की ओर ध्यान देने पर ज्ञात होता है कि इसका क्षेत्र केवल अचेतन मन पर स्थिर था। जिनका उल्लेख आधुनिक मनोविज्ञान के माध्यम से नहीं समझाया जा सकता है इसका मुख्य कारण भौतिकवाद के

ऊपर आधारित विज्ञानों की पद्धति को अपनाया जाता है। भारतीय एवं पाश्चात्य मनोविज्ञान में यही अंतर है कि भारतीय मनोविज्ञान भौतिक वाद पर आधारित नहीं है।[230]

वह केवल तत्वों को ही नहीं बल्कि उसके अतिरिक्त अन्य चेतन जीवों तथा ईश्वर को भी मानता है अत: दोनों में महान अन्तर है इस भेद के कारण ही पाश्चात्य मनोविज्ञान के प्रारम्भ होने से पूर्व भारत में मन के सम्पूर्ण पक्षों का व्यवहारात्मक एवं वैज्ञानिक ज्ञान प्राप्त कर लिया था।जिसकी आज पाश्चात्य मनोविज्ञान कमी महसूस करता है। आधुनिक मनोविज्ञान संवेदना उद्वेग प्रत्यक्षीकरण कल्पना विचार स्मृति आदि मानसिक प्रक्रियाओं तथा उनको उत्पन्न करने वाले भौतिक कारण तथा शारीरिक अवस्थाओं का ही अध्ययन करता है।आत्मा व मन का अध्ययन नहीं करता है।बल्कि मस्तिष्क के कार्य से भिन्न आत्मा व मन का अध्ययन वह नहीं करता।वह मस्तिष्क के कार्य से भिन्न आत्मा व मन का अस्तित्व नहीं मानता। हमें जो ज्ञात होता है उन सभी का ज्ञान ज्ञानेन्द्रियों से सम्बन्धित नाड़ियों द्वारा बाह्य जगत् की उत्तेजनाओं के प्रभा से मस्तिष्क के भौतिक तत्वों की गतियों व प्रगतियों ,क्रियाओं व प्रतिक्रियायों के रूप में जानता है।[231]

सांख्य योग में चित्त मन का स्थान आत्मा से भिन्न है।चित्त जो प्रकृति से उत्पन्न है उसका विकास चेतन सत्ता के सन्निधान के बिना नहीं हो सकता।अचेतन तत्व बिना आत्मा के प्रकाश से प्रकाशित नहीं हो सकता। सूक्ष्म से स्थूल की ओर विकास होता है। अर्थात् अतिसूक्ष्म प्रकृति से महत्तत्त्व की अभिव्यक्ति होती है।

उस महत्तत्व या बुद्धि से जिसे चित्त कहा जाता है अहंकार की अभिव्यक्ति होती है तमस् प्रधान अहंकार से पञ्च तन्मात्राओं तथा इन पञ्च तन्मात्राओं के माध्यम से पञ्च महाभूतों की अभिव्यक्ति से सम्पूर्ण दृश्य स्थूल जगत् है इन पञ्च महाभूतों से उनका कारण पञ्च तन्मात्राएँ सूक्ष्म

230 शर्मा. राम नाथ, भारतीय मनोविज्ञान ,एटलान्टिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूट, दिल्ली : 2005

231 शुक्ल. लालजी राम, आधुनिक मनोविज्ञान ,साहित्य सेवक कार्यालय ललिया देवी.वाराणसी : 1957

होती है। साधारण व्यक्तियों को उनका प्रत्यक्ष नहीं हो सकता वह तो केवल अनुमान लगा सकते हैं। इनका प्रत्यक्ष तो केवल योगियों को ही होता है। पञ्चतन्मात्रा,मन इन्द्रिय आदि से अहंकार सूक्ष्म होता है और अहंकार से बुद्धि , से प्रकृति अधिक सूक्ष्म है। योग के अनुसार मस्तिष्क शरीर का अंग होने से स्थूल है। मन अत्यन्त सूक्ष्म है। चित्त अर्थात् बुद्धि अत्यधिक सूक्ष्म है।

कहीं-कहीं योग में अन्त: करण,बुद्धि अहंकार और मन सभी को चित्त कहा गया है। यह चित्त जड़ होते हुए भी चेतन सत्ता के प्रकाश से प्रकाशित होकर ज्ञान प्रदान करता है। बिना चेतन सत्ता के ज्ञान नहीं सकता। चेतन सत्ता ही संपूर्ण ज्ञान का आधार है। उसको भूलना जिसके बिना ज्ञान ही असंभव है वास्तविक लक्ष्य से मनोविज्ञान को दूर हटा देना है।

पाश्चात्य मनोविज्ञान तो स्थूल शरीर तक ही सीमित है। उसमें तो योग के अनुसार चित्त जैसे सूक्ष्म जड़ तत्व का भी विवेचन नहीं हुआ है। चित्त पर आश्रित मस्तिष्क की सब क्रियाओं का होना निर्भर है। यदि उसका विवेचन मनोविज्ञान नहीं करता है तो वह यथार्थ रूप से मानसिक क्रियाओं का ज्ञान किस प्रकार प्राप्त कर सकता है। मन की मानसिक क्रिया किस प्रकार की है? यह मन भी भारतीय विचार के अनुसार प्रवृत्ति की अभिव्यक्ति होने के कारण जड़ तत्व है, जो अचेतन होने के कारण बिना चेतन सत्ता के प्रकाश से ज्ञान प्रदान नहीं कर सकता।

पाश्चात्य मनोविज्ञान की सबसे महत्वपूर्ण कमी मनोविज्ञान के अन्तर्गत मन और आत्मा को अध्ययन का विषय नहीं मानना है। आत्मा का विवेचन किए बिना मनोविज्ञान का अध्ययन अधूरा सा है। इंद्रियाँ मन के संयोग के बिना ज्ञान प्रदान नहीं करती। मन ही इंद्रियों द्वारा प्राप्त सामग्री को अर्थ प्रदान करता है। जब तक चित्त विषयाकार नहीं होता तब तक ज्ञान का प्रश्न ही नहीं उठता। परन्तु चित्त के विषयाकार हो जाने पर भी यदि उस चित्त में चेतन सत्ता प्रतिबिम्बित नहीं होती है तो ज्ञान प्राप्त नहीं होता। चेतन सत्ता के प्रकाश के बिना तो सब कुछ निरर्थक है, क्योंकि चित्त तो जड़ है। जड़ होने के पश्चात् भी चित्त ज्ञान का साधन है। अतएव चित्त और आत्मा दोनों ही मनोविज्ञान के अध्ययन के

विषय है जिन्हें आज के पाश्चात्य मनोविज्ञान ने तत्त्व दर्शन का विषय कहकर अपने अध्ययन का विषय नहीं स्वीकारा है।

पाश्चात्य मनोविज्ञान आधुनिक समय में विकास के स्थिति में भी मात्र चेतन और अचेतन मन तक सीमित है। कुछ मनोवैज्ञानिक सम्प्रदायों को छोड़कर अन्य सभी मनोवैज्ञानिक यह मानने लगे हैं कि यह अचेतन मन से अत्यन्त ही शक्तिशाली है वह हमारी चेतन प्रवृत्तियों को निश्चित करता है उसकी शक्ति को हम सामान्य रूप से नहीं जान पाते किन्तु यह प्रमाणित है कि वह हमारे व्यवहारों को प्रभावित करता रहता है। वर्तमान में इस अचेतन मन का अध्ययन आधुनिक पाश्चात्य मनोविज्ञान के अध्ययन का प्रमुख विषय बन गया। चिकित्सक भी चिकित्साशात्र के क्षेत्र में मनोवैज्ञानिक अध्ययन को महत्व देते हैं। इसके बिना चिकित्साशास्त्र का अध्ययन वर्तमान में अपूर्ण माना जाता है। समस्त शारीरिक रोग के लिए मानसिक रोग का कारण बताया जाता हैं अर्थात् रोगों के मूल में मानसिक विकार होने कारण उन्हें दूर किए बिना रोग से मुक्ति नहीं मिल सकती हैं।[232]

मनोविश्लेषण भारत के प्रमुख वैज्ञानिक फ्रायड यूंग एडलर आदि के अनुसार व्यक्ति के अचेतन मन में ऐसी भावना ग्रन्थियाँ घर कर लेती हैं जिनके कारण व्यक्ति मनोरोगी हो जाता है। रोग का बाह्य उपचार व्यक्ति को रोग से मुक्त नहीं कर पाता। उसके लिए तो अचेतन भावना-ग्रंथियों का ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक हो जाता क्योंकि उसके समाप्त होने पर समस्त रोगों से मुक्ति मिल जाती है मानसिक संघर्ष, हताशा, कुण्ठा, कुसमायोजन अथवा मानसिक संतुलन की कमी से व्यक्ति के स्नायुमण्डल हमारी आरोग्यता में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। फ्रायड के अनुसार समस्त मानसिक रोगों का मुख्य कारण आन्तरिक मानसिक संघर्ष तथा दमन है। दमन के कारण ही भावना ग्रंथियाँ बनती है, जो कि मानसिक रोगों का रुप ग्रहण कर लेती हैं।[233]

---

232 शर्मा. राम नाथ, भारतीय मनोविज्ञान ,एटलान्टिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूट, दिल्ली : 2005

233 मनोविज्ञान और जीवन : लालजीराम शुक्ल

एडलर के अनुसार आत्मस्थापन की मूल प्रवृत्ति की संतुष्टी न होने के कारण हीनत्व ग्रंथि बन जाती है। जिससे जीवन का समायोजन असंतुलित हो जाता है। अन्ततोगत्वा उसके माध्यम से मनोरोगों की उत्पत्ति होती है। कार्ल युंग के अनुसार हमारे मानसिक रोगों का कारण प्राकृतिक इच्छाओं की पूर्ति का न होना। वातावरण से असामंजस्य व्यक्तित्व में असंतुलन कर देता है। जिसके कारण सभी भावना-ग्रंथियां मन को दुर्बल एवं संपूर्ण विचार भाव व्यवहारों को असम्बद्ध कर देती है। इसी अवस्था में व्यक्ति अनेक रोगों से आक्रांत हो जाता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि सभी मनोविश्लेषणवादियों की गवेषणा से पता चलता है कि पागलपन मनोदौर्बल्य, मनोविक्षिप्तता आदि के कारण मानसिक संघर्ष और हताशा प्राप्त होती है।[234] फ्रायड युंग आदि मनोविश्लेषणवादियों ने अचेतन मन की अवधारणा से भारतीय वैज्ञानिक अधिकांश सहमत हैं अचेतन मन उस शिलाखंड की भांति जल में डूबे हुए भाग के समान है। जो दृश्य भाग से लगभग नौ गुना अधिक होता है और इसका अनुमान हिम में दिखलाई पड़ने वाले हिमशिला भाग में नहीं लगा सकते। हम चेतन से अचेतन मन के विस्तार का अनुमान नहीं कर सकते। यह अचेतन मन हमारी अधिकांश क्रियाओं से प्रमाणित होता है, और हमें अदृश्य रूप से प्रभावित करता। व्यक्ति उन अदृश्य प्रभावों को न समझ पाए या उनके प्रति सामान्य व्यक्तियों का ध्यान भी न जाए, किन्तु उसकी सत्ता को अस्वीकार नहीं किया जा सकता क्योंकि हमारा प्रत्येक व्यवहार उससे प्रभावित होता है भारतीय मनोविज्ञान में इसे संस्कार कहते हैं। योग दर्शन के ज्ञानात्मक, भावात्मक , क्रियात्मक तीन प्रकार के संस्कार बताये गये है। संस्कार पूर्व जन्मों के भी होते हैं जिन्हें वासना कहा जाता है।[235]

व्यवहारवादी सम्प्रदाय के जन्मदाता अमेरिकी मनोवैज्ञानिक वाटसन हैं जो मानव को यन्त्रवत मानते है। चेतन का अस्तित्व उनके यहाँ मात्र है। उनके अनुसार मनोविज्ञान का विषय प्राणी के व्यवहार का अध्ययन करना है। मनोविज्ञान को हम अन्तर्निरीक्षण विधि के द्वारा कभी भी वैज्ञानिक

---

234 शुक्ल. राजाराम, मनोविज्ञान और जीवन, नन्दकिशोर एण्ड व्रदर्स ,वाराणसी : 1947
235 वैदिक अनुष्ठानों का मनोवैज्ञानिक अनुशीलन

नहीं बना सकते। क्योंकि व्यवहारवादियों ने मात्र मनोविश्लेषणवादियों के अचेतन मन के अध्ययन का खंडन ही नहीं किया अपितु उन्होंने चेतन सत्ता मानने वाले सभी मनोवैज्ञानिक सम्प्रदायों का खण्डन किया है।वे अंतरनिरिक्षण विधि के द्वारा प्राप्त ज्ञान मानने के लिए तैयार नहीं होते। उनके अनुसार मनोविज्ञान व्यवहार के निरीक्षण और परीक्षण के आधार पर ही वैज्ञानिक यथार्थ ज्ञान प्राप्त कर सकता है।

हमारा संपूर्ण व्यक्तित्व अधिकांश वातावरण पर आधारित है। इस संप्रदाय के अनुसार मनोविज्ञान के अध्ययन का विषय व्यवहार तक सीमित है। गेस्टाल्टवादी विचारधारा के प्रवर्तक मैक्सवर्दाइमर हैं तथा जिसमें कोफका एवं कोहलर का भी योगदान है। चेतना सम्पूर्ण इकाई है,वह अलग-अलग मूल प्रवृत्तियों व प्रत्यक्ष के संयोग से प्राप्त नहीं होता। गेस्टाल्टवाद के इस प्रकार से समग्र मन अध्ययन का विषय होने पर भी वह हमें मन की समस्त अवस्थाओं के विषय में पूर्णरूप से समझा नहीं सकता।चित्त की चार अवस्थाएं होती हैं – १ जाग्रत २ स्वप्न ३ सुषुप्ति ४ तुरीय,। स्वप्न तथा सुषुप्ति तो अचेतन अवस्था में समाहित होती है। पाश्चात्य मनोविज्ञान के शब्दों में हम इन चारों अवस्थाओं को तीन अवस्थाओं के रूप में कह सकते हैं- चेतन, अचेतन, अतिचेतन।

इन समस्त संप्रदायों के विषय में जानने से यह प्रतीत होता है कि पाश्चात्य मनोविज्ञान का कोई भी संप्रदाय अभी तक मन के संपूर्ण रूप का भारतीय मनोवैज्ञानिक की तरह विवेचन नहीं कर पाया। इन सब सम्प्रदायों की वैज्ञानिक विधि भी जिनके ऊपर आधारित है, हमें अधूरे निर्णय तक ले जाकर ही छोड़ देती हैं। किसी भी निरीक्षण या प्रयोग के द्वारा अभी तक हम न अतिचेतन अवस्था तथा इन्द्रिय निरपेक्ष प्रत्यक्षीकरण को नहीं समझ पाए। भारतीय मनोविज्ञान के अनुसार हमारा सम्पूर्ण ज्ञान के आधार पर माना जाता है।

किन्तु ज्ञान सम्बन्धी कुछ ऐसी विभिन्न घटनाएँ जो कि इन्द्रियातीत तथा देश काल से भी परे हैं। एक व्यक्ति के मानसिक विचार और भाव अत्यधिक दूर रहने वाले व्यक्ति के द्वारा व्यक्त किए जा

सकते हैं। भिन्न भिन्न देश काल में एक मानसिक घटना को ठीक उसी स्वरूप में अनुभव किया जा सकता। आधुनिक प्रयोगात्मक मनोविज्ञान इसका कोई संतोष जनक जबाब नहीं दे पाता।आधुनिक मनोविज्ञान मात्र इन्द्रियों के द्वारा प्राप्त अनुभव पर आधारित है अर्थात् हमारा सम्पूर्ण ज्ञान देश काल-सापेक्ष–इन्द्रिय अनुभव तक ही सीमित है। भारतीय मनोवैज्ञानिक ने दो प्रकार के भिन्न भिन्न अनुभव बताएं है –

प्रथम इन्द्रिय प्रत्यक्ष और द्वितीय इन्द्रिय निरपेक्ष प्रत्यक्ष ज्ञान के प्रथम नियम द्वितीय नियम पर लागू नहीं होता है। एक देश काल के सापेक्ष है तो दूसरा देश काल के निरपेक्ष। जो सामान्य बुद्धि से परे है। चार्वाक और मीमांसकों को छोड़ कर अन्य सभी दार्शनिक इन्द्रिय-निरपेक्ष प्रत्यक्ष मानते है। पातंजल योग में ध्यान के निरन्तर अभ्यास से व्यक्ति समाधि अवस्था को प्राप्त कर लेता है। इस अभ्यास से उसे सूक्ष्म अतीन्द्रिय विषयों का प्रत्यक्ष होने लगता हैं। जिन सूक्ष्म विषयों का प्रत्यक्ष योगी होने लगता उसका साधारण व्यक्ति नहीं कर सकता। उन समस्त विषयों का प्रत्यक्ष योगी को होता उसे तो देश काल निरपेक्ष विषयों का भी प्रत्यक्ष होता है। दूरस्थ दृश्यों को देखना ,अपने विचारों को दूसरे व्यक्ति के पास पहुँचा,जिन शब्दों को साधारण इन्द्रियाँ ग्रहण नहीं कर सकती ,उनकी सुनाना ,संकल्प के द्वारा विश्व की भौतिक घटनाओं में परिवर्तन पैदा करना, विचार मात्र से रोगी को रोग से निवृत्त करना आदि विशेषताएँ भारतीय मनोविज्ञान की है।

उपर्युक्त बातों से यह निष्कर्ष प्राप्त होता है कि आधुनिक पाश्चात्य मनोविज्ञान से कहीं अधिक विस्तृत क्षेत्र भारतीय मनोविज्ञान तथा योग मनोविज्ञान का हैं।इस प्रकार कहा जा सकता है कि पाश्चात्य मनोविज्ञान को भारतीय मनोविज्ञान के अध्ययन से अपनी कमियों की पूर्ति करना चाहिए। इस प्रकार भारतीय मनोविज्ञान क्रियात्मक प्रयोगात्मक है।

--------------------------------*****************--------------------------------

उपसंहार

उपसंहार

भारतीय परम्परा में वेद प्राचीनतम और पवित्र ग्रन्थ है। भारतीय शास्त्रों के अनुसार ऋषियों ने वेद मन्त्रों का साक्षात्कार के द्वारा अनुभूत किया और साक्षात्कार धर्मा होने के कारण ही इन्हें ऋषियों की संज्ञा प्राप्स हुई। इसी कारण उन्हें ऋषि कहा गया है **साक्षात् कृत् धर्माण:ऋषय: बभूवु:**[236] अर्थात् **ऋषियो मन्त्रद्रष्टार:**[237]। उन अनुभूत मन्त्रों के विषय में अपने शिष्यों को अवगत कराया इसी बात को ऋग्वेद में इस प्रकार कहा गया है –

यज्ञेन वाचः पदवीयमायन्तामन्वविन्दन्नृषिषु प्रविष्टाम्।

तामाभृत्या व्यदधुः पुरुत्रा तां सप्त रेभा अभि सं नवन्ते॥[238]

अपने अन्त: करण में जिन वाणीयों को ऋषियों ने प्राप्त किया, उसे समस्त मानव कल्याण के लिए दिया।

भारतीय मनोविज्ञान में मनस् शब्द का प्रयोग अवधान मंत्र के रूप में किया गया है। मनस् ही अवधान का साधन है भाषा की दृष्टि से मनस् का अर्थ मन हृदय का प्रत्यछ ज्ञान तथा इन्द्रिय और मन दोनों में चैतन्य का विकास है। जब की इन्द्रियां वर्तमान को जानती है मन त्रैकालिक है, इन्द्रियां आलोचनात्मक नहीं है मन में आलोचनात्मक क्षमता है। इन्द्रियां तात्कालिक ज्ञान का साधन है, मन में त्रैकालिक ज्ञान होता है। पाश्चत्य मनोविज्ञान की नवीनतम शाखा परामनोविज्ञानिक इस क्षेत्र में अनुसन्धान की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया गया है। पिछले कुछ वर्षों में पाश्चात्य मनोविज्ञानिकों ने अपने देशो में और भारत में भी इस ओर ध्यान आकर्षित किया है।

236 निरुक्त 1/20

237 निरुक्त 1/25

238 ऋग्वेद 10/71/3

न्याय दर्शन के अनुसार मनोवैज्ञानिक कार्यकारण और भौतिक कार्य कारण में कोई विशेष अन्तर नहीं है । ज्ञान भी उसी प्रकार उत्पन्न होता है जिस प्रकार भौतिक घटनायें उत्पन्न होती है भौतिक घटनायें कुछ भौतिक कारणों के एकत्रित हो जाने से उत्पन्न होती है । इस प्रकार ज्ञान भी आत्मा, मनस् और इन्द्रिय आदि संस्कार के एकत्रित होने से उत्पन्न होता है, ज्ञान का कारण इनका परस्पर सन्निकर्ष मात्र है।

भारतीय मनोविज्ञान में भ्रम अथवा विपर्यय की प्रकृति पर दार्शनिक दृष्टि से विचार किया गया है। विभिन्न विचारकों ने विपर्यय की व्याख्या करने में भिन्न-भिन्न सिद्धान्त उपस्थित किये है। जबकि पश्चिम में विपर्यय की व्याख्या करने में उसकी भौतिक दशाओं पर विशेष ध्यान दिया गया है। भारत में विपर्यय की व्याख्या में उसके मनोवैज्ञानिक ज्ञान शास्त्रीय व आध्यात्मिक पहलू पर विशेष ध्यान दिया गया है । जयंत भट्ट ने विपर्यय को मानसिक भ्रान्ति से अलग करने के लिए उसे इन्द्रिय भ्रान्ति कहा है अर्थात् यह ऐसी भ्रान्ति है जो कि इन्द्रियज अर्थात् इन्द्रिय से उत्पन्न है। इस प्रकार वह मानसिक भ्रान्ति से भिन्न है, जो कि इन्द्रिय से उत्त्पन्न है यह मानस इन्द्रिय की तुलना में केन्द्रित है।

पाश्चात्य मनोवैज्ञानिकों के समान भारतीय मनोवैज्ञानिकों ने भी रूचि का स्मृति से घनिष्ठ सम्बन्ध माना है । जिस वास्तु का प्रत्यक्षीकरण अत्यधिक रूचि उत्त्पन्न करता है और उसकी ओर अत्यधिक ध्यान दिया जाता है।

पाश्चात्य मनोविज्ञान के सामान भारतीय मनोविज्ञान कभी भी जीवन से तटस्थ नहीं रहा है। भारतीय मनोविज्ञान मानव के वास्तविक जीवन से आरम्भ होता है जिसे प्राचीन ऋषियों ने यथार्थ जीवन में उपस्थित होने वाली मनोवैज्ञानिक समस्याओं का विश्लेषण करते हुए ही भारतीय मनोविज्ञान ने सत्य की खोज की इनका मुख्य उद्देश्य समाज में आधिक व्यवस्थित और संतुलित जीवन व्यतीत करने के उपायों की खोज करना था। जिसमें मन को एक रूपता और संकलन के रूप में कहा गया है "मनसि वचसि कार्ये च महतां एक रूपता" अथवा मन और वचन तथा कार्यों की एक रूपता ही मनुष्य के चरित्र का आधार है।

भारतीय मनोवैज्ञानिक शरीर मनस् और आत्मा को परस्पर घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित मानते है। समस्त इन्द्रियाँ शरीर का अंग है। बुद्धि और अहंकार मनस् के तत्त्व है , आत्मा एवं शरीर अथवा मन से सम्बन्धित होने पर शारीरिक और मानसिक क्रियाएं संपन्न होती है। भारतीय मनोवैज्ञानिक शरीर को सदैव आत्मा के साध्यों को प्राप्त करने का साधन मानते है। उन्होंने यह स्पष्ट कर दिया है कि शरीर के बिना इन साध्यो को प्राप्त करना सम्भव नहीं है।

महाभारत के शांतिपर्व में शरीर और आत्मा के परस्पर सम्बन्ध का उल्लेख देखने को मिलता है। महाभारत के अनुसार शारीरिक रोग मानसिक रोगों से और मानसिक रोग शारीरिक रोगों से उत्पन्न होते हैं। शरीर के रोग शरीर को पित्त, वात अथवा कफ किसी भी एक तत्व के अधिक बढ़ जाने के कारण होते है मानस् में सत्व, रजस, तमस तीनों गुण विद्यमान होते है इनकी साम्यावस्ता मानसिक स्वस्थ का आधार है। रजस् अथवा तमस् के बढ़ जाने से मानसिक रोग उत्पन्न होते है।

भारतीय आध्यात्मिक साधना में मानसिक आरोग्य एक आवश्यक शर्त रहा है। इसे प्राप्त किये बिना आध्यात्मिक साधना सम्भव नहीं है। अस्तु,आध्यात्मिक साधना के मार्ग में आगे बढ़ने वाले जिज्ञासुओं को सबसे पहले मानसिक आरोग्य प्राप्त करना चाहिये।

इस दिशा में भारतीय विचारकों का महत्वपूर्ण योगदान दिया है। भारतीय मनोविज्ञान और मानसिक आरोग्य स्पष्ट विवेचन भारतीय विचारकों के द्वारा किया गया है जो कि भारतीय धर्म, दर्शन और मनोविज्ञान परस्पर घनिष्ठ रूप से संबंधित रहे हैं। मानसिक आरोग्य और चिकित्सा के क्षेत्र में भारतीय मनोवैज्ञानिकों के विचार लम्बी सांस्कृतिक परम्पराओं और हजारों सालों के अनुभवों पर आधारित हैं। उन्होंने चेतना की विभिन्न अवस्थाओं का विश्लेषण करके मनोवैज्ञानिक समस्याओं को सुलझाने का प्रयास किया है। चूंकि अनेक मनोजनित रोग मनस् में ही जन्म लेते हैं। इसलिये भारतीय मनोवैज्ञानिकों द्वारा बतलाये गये मन के नियन्त्रण के उपायों से इन रोगों को दूर किया जा सकता है। भारत में मनोवैज्ञानिक खोज का लक्ष्य चेतन और अचेतन सभी प्रकार के प्रयासों से एक अति चेतन अवस्था को प्राप्त करना रहा है जो कि सब प्रकार के संकलन की अवस्था है।

ऋग्वेद संहिता ज्ञान की विशिष्टता से युक्त है और निर्विवाद रूप से सर्वोपरि है। किसी भी उत्तम विचार या साहित्य का अपने पश्चात् के साहित्य पर प्रभाव पड़ता है। जो साक्षात् अथवा परम्परागत रूप से समस्त कृतियों में दृष्टिगोचर होता है। ऋग्वेद संहिता का प्रभाव सम्पूर्ण वैदिक साहित्य तथा दर्शनशास्त्रों पर परोक्ष, अपरोक्ष रूप से दृष्टिगोचर होता है। ऋग्वेदीय ज्ञान का अनुवर्तन, अनुकरण, अनुगमन, अनुशीलन, अनुसन्धान एवं अन्वेषण आधुनिक शास्त्रों में देखा जा सकता है।

ऋग्वेद के मनस्तत्त्व के परिशीलन करने पर यह तथ्य दृष्टिगोचर हुआ कि आत्मा की मुख्य दिव्य शक्तियाँ जो इच्छा शक्ति, क्रिया शक्ति और ज्ञान शक्ति के रूप में ज्ञात होती हैं। इन तीनों शक्तियों की अभिव्यक्ति का आधार मन है। ऋग्वेद में मन की तीनों शक्तियों का वर्णन प्राप्त होता है। जिसका वर्णन ऋग्वेद के दशम मंडल में परिलक्षित होता है जो इस प्रकार है यथा- 'कामस्तदग्रे[239] = इच्छाशक्ति, 'चन्द्रमा मनसो जातः[240] ज्ञानशक्ति, 'अभ्यैक्षेतां मनसा रेजमाने[241] क्रियाशक्ति के रूप में वर्णित हैं। संज्ञान सूक्त में तीनों धाराएँ सम् इच्छा, सम् क्रिया एवं संज्ञान त्रिविध् शक्ति की त्रिवेणी है। आत्मा की तीनों धाराएँ इच्छा, ज्ञान एवं क्रिया मन में आकर अभिव्यक्त होती हैं। ज्ञान शक्ति की यह धारा ज्ञानेन्द्रियों में अभिव्यक्त होती हैं। क्रिया शक्ति का आधार कर्मेन्द्रियाँ हैं। इच्छाशक्ति का आधार मन होता है। इन्हीं तीनों धाराओं को लेकर के वेद का उपजीव्य ग्रन्थ भी प्रस्फुटित होते हैं। ऋग्वेदीय मनस्तत्त्व अन्य तीनों संहिताओं में कर्म, उपासना एवं विज्ञान के रूप में वर्णित हैं। वेद के पश्चात् ब्राह्मण और उपनिषद् ग्रन्थ में इच्छा शक्ति की धारा का विशेषतः व्याख्यान प्राप्त होता हैं। जहाँ ऐक्षत, (न चाहा हुआ) अकामयत (जिसकी कामना न की जाये), अपश्यत (जिसको देखा न जा सके) जैसे क्रिया पदों की बहुलता है। दर्शनशास्त्र ज्ञानशक्ति की धारा से आप्लावित है। व्याख्या के प्रकार भेद से सभी दर्शनशास्त्र इसमें समाविष्ट हैं। धनुर्वेद, आयुर्वेद, अर्थवेद, गन्धर्ववेद, कल्पसूत्रों, ज्योतिषशास्त्र में तथा आधुनिक मनोविज्ञान में क्रियाशक्ति की धारा का प्रवाह दिखाई देता है। शिक्षा;

239 ऋग्वेद 10/129/4
240 वही 10/90/13
241 वही 10/121/6

वर्ण, स्वर एवं छन्द जो कि क्रियात्मक हैं, मन से ही प्रकट होते हैं। नास्तिक दर्शनों में जैन दर्शन का स्याद्वाद, बौद्ध दर्शन का चार आर्यसत्य भी मनोमूलक हैं।

ऋग्वेद संहिता के परिशीलन के पश्चात् मनस्तत्त्व के निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त होते हैं- मन के काम, संकल्प आदि अनेक भाव हैं, मन सूक्ष्म है एवं अणु है। मन स्वप्न और योजनाओं का स्रष्टा है। मन भौतिक एवं अभौतिक दोनों है। मन में वेग गुण है, मन पर नियन्त्रण संभव है। मन अन्तःकरण है एवं सत् असत् स्वरूप है, मन ज्ञेय और अज्ञेय है। तप, ध्यान व सांसारिक विरक्ति से मन की शुद्धता होती है। व्यष्टि मन अणु है एवं समष्टि मन विभु है। मन कर्ता है, करण है एवं अधिकरण है। यह जीवात्मा का साधन है एवं कर्मों का आधार है। मन आत्मा से भिन्न है, सूक्ष्म शरीर का घटक है एवं इन्द्रियों में प्रधान है जिससे समस्त इन्द्रियाँ वश में होती है।

-----------------------------*****************-----------------------------

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

प्राथमिक स्रोत

- ऋग्वेद संहिता (सायण), वैदिक संशोधन मण्डल, पुणे : 1972
- ऋग्वेद संहिता- श्रीऽमत्सायणाचार्यविरचित- माधवीयवेदार्थप्रकाशसहिता, सम्पादक– श्रीमन्मोक्षमूलरभट्टः कृष्णदास अकादमी, वाराणसी : 1983
- ऋग्वेद संहिता, (सायणभाष्य सहित) हिन्दी अनुवादक राम गोविन्द त्रिवेदी, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणासी : 1997
- ऋग्वेद संहिता, (सायणभाष्य सहित) सं० मैक्समूलर, चौखम्भा संस्कृत सीरीज, वाराणासी : 1966
- ऋग्वेद संहिता का सुबोधभाष्य, श्रीपाद दामोदरसातवलेकर, स्वाध्याय मण्डली पारडी
- ऋग्वेद संहिता, अनुवादक- डॉ जियालाल कम्बोज, विद्यानिधि प्रकाशन दिल्ली : 2003
- ऋग्वेद सर्वानुक्रमणिका (कात्यायन), उमेशचनद्र, विवेक प्रकाशन, अलीगढ़
- The RigVeda Samhitaa, Translation- Dr. Prasanna Chandra Gautam Bharatpu Volume4, Bharatiya Vidya Bhavan , Bombay : 2014-15.
- यजुर्वेद संहिता, सम्पादक – महर्षि देवराज, काशीहिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी : 1970
- सामवेद संहिता, श्रीपाद दामोदर सातवलेकर, स्वाध्याय मण्डल, पारडी : 1939
- एतरेय ब्राह्मण सायण भाष्य, सम्पादक गणेश शास्त्री, पुणे : 1931
- ऐतरेय ब्राह्मण, गंगाधर बापूराव काले, आनन्द आश्रम, पुणे : 1931

- जैमनिय ब्राह्मण, संपादक -डॉ रघुवीर सरस्वती, विहार नागपुर : 1954
- तैत्तिरीय ब्राह्मण, भट्ट भास्कर, ओरियण्टल लाइब्रेरी पब्लिकेशन, मैसूर : 1921
- तैत्तिरीय ब्राह्मण, सम्पादक- सातवलेकर, स्वाध्याय मण्डल, आन्ध्रा : 1945
- गोपथब्राह्मण, टीकाकार- क्षेमकरणदास त्रिवेदी, लूकरगंज प्रयाग, प्रथम संस्करण : 1924
- निरुक्त वेदार्थ, दीपक इन्द्र मणि विद्यालङ्कार, कन्या गुरुकुल, नरेला, संवत् : 2033
- ईशादि नौ उपनिषद्,शाङ्कर भाष्यार्थ, गीताप्रेस गोरखपुर, चौदहवाँ पुनर्मुद्रण संवत् : 2074
- मनुस्मृति, मनीराम इच्छाराम, सस्सुना बिल्डिंग, बम्बई : 1913
- शांखायन आरण्यक, सायण भाष्य, आनंद आश्रम, पुणे : 1997
- महाभारत, गीता प्रेस गोरखपुर, चौवालिसवाँ संस्करण, गोरखपुर, संवत् : 2072
- श्री मद्भगवद्गीता, टीकाकार- सातवलेकर.स्वाध्याय मंडल, पारडी : 1961
- भागवत पुराण, गीता प्रेस, गोरखपुर, द्वितीय संस्करण, सम्बत : 1999
- नाट्यशास्त्र, भारत ओरियण्टल इन्स्टीट्यूट, बड़ौदा : 1934

द्वितीयक स्रोत

- ऋग्वेदभाष्यभूमिका(सायणाचार्यकृत), श्रीजगन्नाथ पाठक, चौखम्बाविद्याभवन, वाराणसी, सं. : 1982
- ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका, स्वामी दयानन्दगोविंद राम महासानन्द, कलकत्ता, प्रथम संस्करण : 1992

- ऋग्वेदभाष्यम्, महर्षिदयानन्द, सम्पादक-दयानन्दअर्पण, भगवतीलेजरप्रिंट्स, प्रथमसंस्करण, दिल्ली, संवत् : 2060
- तैत्तिरीय ब्राह्मण, व्याख्याकार.भट्ट भास्कर, ओरियण्टल लाइब्रेरी पब्लिकेशन, मैसूर : 1921
- गोपथ ब्राह्मण, टीकाकार- क्षेम करणदास त्रिवेदी, लूकरगंज प्रयाग, प्रथम संस्करण : 1924
- जैमनिय ब्राह्मण, संपा. डॉ रघुवीर सरस्वती, विहार नागपुर : 1954
- कपिष्ठल कठसंहिता, सम्पादक. रघुवीर मेहर चंद्र लक्ष्मण दास, दरियागंज, दिल्ली : 1968
- काठक संहिता, सम्पा. सातवलेकर, पारणी : 1915
- तैत्तिरीय ब्राह्मण, सम्पादक- सातवलेकर, स्वाध्याय मण्डल, आन्ध्रा : 1945
- श्री मद्भगवद्गीता, टीकाकार- सातवलेकर, स्वाध्याय मंडल, पारडी : 1961
- रानाडे,रामचन्द्र, उपनिषद् दर्शन का रचनात्मक सर्वेक्षण, प्रथम संस्करण, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर : 1971
- काणे,पी.वी., धर्मशात्र का इतिहास, भण्डारकर ओरियन्टल रिसर्च इंस्टीट्यूट, पूना : 1941
- उपाध्याय, बलदेव, वैदिक साहित्य एवं संस्कृति, शारदा मंदिर, वाराणसी : 1967
- गैरोला, वाचस्पति, वैदिक साहित्य और संस्कृति, चौखम्भा संकृतप्रतिष्ठान, दिल्ली : 2008
- विद्यालङ्कार.दीपक इन्द्र मणि, निरुक्त वेदार्थ, कन्या गुरुकुल, नरेला, संवत् : 2033
- कुमार,शशिप्रभा, वैदिक अनुशीलन, विद्यानिधि प्रकाशन, दिल्ली : 2005
- पातंजल न्याय दर्शन, चौखम्भा संस्कृत सीरीज, वाराणसी : 1970
- नन्द. ओमा, पातंजल योग प्रदीप, प्रदीप प्रेस, मुरदाबाद : 1942
- शास्त्री, पं जगदीश, उपनिषत् संग्रह, मोतीलाल वनारसीदास, प्रथम संस्करण : 1971
- उपाध्याय, बलदेव, भारतीय दर्शन, शारदा मंदिर, वाराणसी : 1997

- काव्यप्रकाश, टीकाकार. विश्वेश्वर, ज्ञान मण्डल लिमिटेड, वाराणसी : 1960
- तर्क संग्रह, व्याख्याकार शिव नारायण, भारतीय पब्लिसिंग हाउस, दिल्ली : 1974
- चन्द्र. दीवान, दर्शन संग्रह, प्रकाशन शाखा सूचना विभाग, उ० प्र० लखनऊ : 1958
- अरविन्द, दि लाईफ़ आफ डिवाइन, आश्रम पांडिचेरी : 1942
- पंचदशी विद्यारण्य, संस्कृत संस्थान वेद नगर, बरेली : 1972
- अग्रवाल. पद्मा, प्रतीक वाद, मनोविज्ञान प्रकाशन, वाराणसी : 1963
- प्रसाद.लोकनारायण, प्राचीन भारतीय साहित्य एवं संस्कृति की एक झलक, देवप्रयाग, गढ़वाल : 1958
- मिश्र. उमेश, भारतीय दर्शन, हिंदी समिति सूचना विभाग, लखनऊ : 1964
- त्रिपाठी. रामप्रताप, मत्स्यपुराण, हिंदी साहित्य सम्मलेन, प्रयाग, सं० : 2003
- नारमन. एल. मन, मनोविज्ञान, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली : 1961
- मिश्र.श्रीनारायण, वैशेषिक दर्शन-एक अध्ययन, चौखम्भा संस्कृत सीरीज, वाराणसी : 1966
- विदेह .स्वामी विद्यानंद, शिव संकल्प, वेद संस्थान, अजमेर : 1978
- शौनकिय बृहद देवता, सम्पादक- रामकुमार राय, चौखम्भा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, संवत् : 2020
- चौबे. सरयुप्रसाद, मनोविज्ञान की ऐतिहासिक रुपरेखा, विनोद पुस्तकमन्दिर आगरा, सन् : 1988
- शुक्ल. राजाराम, मनोविज्ञान और जीवन, नन्दकिशोर एण्ड व्रदर्स, वाराणसी : 1947
- चिलविल. डॉ शोभा अग्रवाल, वेदों में सम्पूर्ण स्वास्थ्य तथा एकेश्वरवाद, जानवानि प्रकाशन प्राइवेट लिमटेड, दिल्ली : 2013

- सिंह. प्रो० हरेन्द्र प्रसाद, भारतीय दर्शन की रुपरेखा, मोतीलाल वनारसीदास, चतुर्थ संस्करण दिल्ली : 1983
- विण्टरनिट्ज. एम., प्राचीन भारतीय सहित्य का इतिहास, मोतीलाल वनारसीदास, पटना : 1969
- द्विवेदी.डॉ वी०के०, पदार्थ विज्ञान, सम्पादक लक्ष्मीधर द्विवेदी, चौखम्भा कृष्णदास अकादमी, चतुर्थ संस्करण, वाराणसी : 2016
- वैदिक विज्ञान, सम्पादक डॉ दयानन्दभार्गव, राजस्थनी ग्रन्थागार, प्रथम संस्करण : राजस्थान : 1996
- द्विवेदी. डॉ कपिलदेव, वैदिक मनोविज्ञान, विश्वभारतीपरिषद् , चतुर्थ संस्करण, ज्ञानपुर भदोही : 2015
- कृष्णदास.ईश्वर, वेदान्तसार, व्याख्याकार–आद्याप्रसादमिश्र, दुबेप्रिन्टर्स एण्डग्राफिक्स, चतुर्थ संस्करण, इलाहाबाद : 2007
- आत्रेय. शान्ति प्रकाश, योग -मनोविज्ञान, दी इन्टरनेशनलस्टैण्डर्डपब्लिकेशन्स, प्रथम संस्करण, वाराणसी : 1965
- माथुर. एस एस, सामान्य मनोविज्ञान, विनोद पुस्तक मन्दिर, द्वितीय संस्करण, आगरा :1966
- त्रिवेदी, मानसी शुक्ला, वैदिक अनुष्ठनों का मनोवैज्ञान अनुशीलन, नाग पब्लिशर्स, प्रथम संस्करण, दिल्ली : 2004
- रूपम. डॉ, योग मनोविज्ञान.मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स, दिल्ली : 2017
- सिंह. अरुण कुमार, आधुनिक सामान्य मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स, चतुर्थ संस्करण. दिल्ली : 2006

- शर्मा. राम नाथ.एवं रचना शर्मा, भारतीय मनोविज्ञान, एटलान्टिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूट, दिल्ली : 2005
- शुक्ल. लालजी राम, आधुनिक मनोविज्ञान, साहित्य सेवक कार्यालय ललिया देवी. वाराणसी : 1957

कोश-ग्रन्थ

- वाचस्पत्यम् (छः भाग), चौखम्बा संस्कृत ग्रन्थमाला, पं.सं.14, वाराणसी : 1969
- शब्दकल्पद्रुम (पाँच भाग), देव. स्यार राजा राधाकांत देव, चौखम्बा संस्कृत ग्रन्थमाला, वाराणसी : 1967
- वैदिक पदानुक्रम कोश (सं.) विश्वबन्धु. विश्वरानन्द वैदिकशोध संस्थान, होशियारपुर : 2012
- प्रैक्टिकल वैदिक डिक्शनरी, सूर्यकांत, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली : 1981
- संस्कृत हिन्दी कोश, वामन शिवराम आप्टे, मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली : 1989
- एन्सैक्लोपिडीया ऑफ़ अमेरिकन, अमेरिकन कारपोरेशन, न्यूयार्क : 1961
- रकोश, अमरसिंह, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई : 1969
- Vedic Bibliography,Vol. 1, R.N.Dandekar, Karnatak, Publ. House : 1946

पत्र-पत्रिकाएं

- वैदिक विज्ञान, सम्पादक –डॉ दयानंद भार्गव, प्रथम संस्करण, पेज नं०181-195. राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर : 1996

- SHRUTI SHOBHA,Veda Vijnana Shodha Samsthanam .Vol 2 .PP 3-12 . April . Bengaluru : 2015
- SHRUTI SHOBHA,Veda Vijnana Shodha Samsthanam Vol 4 . PP 1-8 . April. Bengaluru : 2017

अन्तर्जालीयस्रोत :

- www.britannica.com . 17/07/2018
- www.hindunet.com .15/04/2018
- https://hi.wikipedia.org/wiki.17/07/2018
- http:/onlineresearchjournalsssminipage id=1902.17/07/2018
- http://wwwmaanavta.comveday 14/01/2019
- http://aksharsah.blogspot.com . 31/12/2018
- www.Sanskrit.nic.in .20/01/2019

-----------------------------*****************------------------------------

परिशिष्ट

International Journal of Research (IJR)

PEN2PRINT®

प्रकाशन प्रमाणपत्र

दिया जाता है

नितेश कुमार मिश्र

को निम्नलिखित शोध पत्र के लिए

भारतीय शास्त्रों में मन का स्वरूप् - एक अध्ययन

प्रकाशित हुआ *International Journal of Research (IJR),* खंड 05 अंक 02 (विशेष अंक)

January 2018 ISSN: 2348-6848

अंतरराष्ट्रीय शोध प्रकाशन पत्रिका (referred & Indexed)

With Impact Factor 5.60 UGC APPROVED journal Sr No. 44396

Index Copernicus Value (ICV) 100 & Indexed in Thomson Reuters

S.N. Sharma

Editor-in-Chief

International Journal of Research (IJR)

www.internationaljournalofresearch.com

Email: contacte@internationaljournalofresearch.com

ISSN 2348-6848

9 772348 684006 >

EduPub™

Scanned by CamScanner

International Journal of Research
Special Issue for UGC Approved Journal-Hindi Papers
Available at https://edupediapublications.org/journals

e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 02
January 2018

भारतीय शास्त्रों में मन का स्वरूप – एक अध्ययन

नितेश कुमार मिश्र

एम.फिल(वैदिक अध्ययन) साँची बौद्ध – भारतीय ज्ञान अध्ययन विश्वविद्यालय, बारला, रायसेन (म.प्र)

सारांश–

मन अर्थात् एक ऐसा तत्व जो की स्वतंत्र सत्ता है जिसके होने से ही वह विषय वस्तुओं के प्रति सजग रहता है मन ही होता है विषय के प्रति आकर्षक होता है, और साथ ही वह उसमें लीन होकर उस वस्तु का भोग–उपभोग करता रहता है वह एकादश इन्द्रियं रूप में है, जो कि सभी जगह विद्यमान रहता है मन की चचंलता और उसकी क्रियाविधि दोनों ही निरंतर साथ–साथ चलती रहती है।

भारतीय शास्त्रों में मन से सम्बधित बहुत ही सहज रूप में उसके आयामों उसके गुणों के बारे में बताया गया है। जब से मानव की सत्ता विश्व में मानी जाती है तभी से उसके क्रियाकलापों का मूल मन ही रहा है। मानव की समग्र बाह्य चेष्टाओं के पीछे रहने वाली प्रेरक शक्ति मन है। मानव की जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीयावस्था भी मनोमूलक है। बाह्यजगत् और अन्तःजगत् का सेतु या उपकरण मानव का मन है। मानव के सुख–दुखः, पाप–पुण्य, शुभाशुभ, क्षति–बुद्धि यहाँ तक कि बन्ध्न और मोक्ष भी मनोमूलक कहे गये हैं।

वस्तुतः पुरुष का कर्त्तृत्व–भोक्तृत्व, सुख–दुःखादि धर्म चित्त मन के ही धर्म हैं।[2] मानव जीवन में मन का अपना विशिष्ट स्थान है क्योंकि आत्मा का मन करण है, उसी से आत्मा धर्म–अधर्म कार्यों में प्रवृत्त होता है।

मुख्य शब्द– मन, मन का अर्थ, मन के गुण।

e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 02
January 2018

प्रस्तावना–

मन ही व्यक्ति का वह अन्तरंग साधन है जिससे वह सोचता है, समझता है, तर्क करता है, इच्छा करता है, संकल्प करता है, विविध वस्तुओं का अनुभव प्राप्त करता है। इन बौद्धिक अनुभवों के अतिरिक्त मनुष्य मन से प्रेम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, द्वेष आदि संवेगों का भी अनुभव करता है। मन के दो चेतन और अचेतन स्तर हैं। जब मानसिक क्रियाएँ होती हैं व्यक्ति को उसकी चेतना रहती है, उनके प्रति वह जागरुक रहता है। इस स्तर पर कार्य करने वाले मन को चेतन मन कहते हैं। जिन मानसिक क्रियाओं के समय मन बेखबर रहता है उस मन को अचेतन या अवचेतन मन कहते हैं।

मन का विषय प्रारम्भ से ही जिज्ञासु मानव को सोचने के लिए उद्वेलित करता रहा है। इस विषय में पूर्वी और पश्चिमी दोनों क्षितिज पर अपने–अपने ढंग से प्रयास हुए किन्तु इस सन्दर्भ में सर्वप्रथम प्रयास भारतवर्ष में ही हुए, जिनका आदि संकलन वैदिक संहिताओं में हुआ। वैदिक ऋषियों के चिन्तन में हमें सर्वप्रथम मन के स्वरूप एवं इसके रहस्यों का ज्ञान मिलता है।

मन का अर्थ एवं परिभाषा–

मननात् मन उच्यते, मन्यते बुध्यते इति मनः[3] अर्थात् जिसके द्वारा ज्ञान प्राप्त होता है वह 'मन' है। मन् धातु से असुन् प्रत्यय द्वारा मनस् शब्द निष्पन्न हुआ है।[4] इससे स्पष्ट है कि ज्ञान या बोध्न क्रिया के लिए प्रयुक्त होने वाली मन धतु से मनस् शब्द निर्मित हुआ है। यास्क ने अपने ग्रन्थ 'निरुक्त' में मनस् शब्द की व्युत्पत्ति मनु अववोधने से की है, जिसका तात्पर्य अववोधन, चिन्तन मनन आदि से है।[5] मन के अनेक पर्याय प्राचीन वाघ्मय में वर्णित हैं। वेदों में मनस्, चेतस्, चित्तम्, हृदय, संकल्प, आकूति, मेध, धृति, मति, मनीषा, काम, श्रद्धा, प्रज्ञान, संज्ञान आदि शब्द मन के लिए प्रयुक्त हैं। इन शब्दों के स्वतन्त्र अर्थ भी हैं। वैदिक मन के आधर पर ही अमरकोष में मन के पर्यायों में चित्त, चेतस्, हृदय, स्वान्त, हृद्, मानस, मन[6] तथा चरक संहिता में अतीन्द्रिय, मन, सत्त्व, चेतस् आदि पद उल्लिखित हैं।[7] इन शब्दों के अतिरिक्त मनस्, अन्तःकरण, उभयेन्द्रिय, इन्द्रियातीत आदि पर्याय भी उपलब्ध होते हैं। ये सभी पर्यायवाची शब्द अपना पृथक्–पृथक् विशिष्ट अर्थ रखते हैं। ऐसे पद जो एकार्थक माने जाते हैं, वे वस्तुतः भिन्न–भिन्न प्रकृति निमित्त के आधर पर प्रयुक्त होने वाले पृथक्–पृथक् स्वतन्त्र पद हैं भले ही आपाततः उनमें अर्थ सादृश्य प्रतीत होता है।

International Journal of Research
Special Issue for UGC Approved Journal-Hindi Papers
Available at https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 02
January 2018

विभिन्न भारतीय शास्त्रों में मन की परिभाषा–

मन के संयम से इन्द्रियाँ वश में होती हैं एवं मोक्ष की प्राप्ति होती है।[8] जीवात्मा के शरीर में षोडश कलायें विद्यमान हैं उनमें मन भी एक कला है। यह मन मूल कारण से उत्पन्न है, ईश्वर रचित है एवं अचेतन है।[9]

संस्कृत वाङ्मय में दर्शनों का विशिष्ट स्थान है। सृष्टि के विभिन्न तत्त्वों पर पृथक्–पृथक् दर्शनों में ऋषियों ने अपने विचार प्रकट किये हैं। दर्शनों में मन का वर्णन एक इन्द्रिय के रूप में किया गया है। मन के गुण, कर्म, स्वभाव, लक्षण, परिभाषा दर्शनशास्त्रों में पूर्णरूपेण वर्णित है।

वैशेषिक दर्शन में मन के विषय में निम्न बातों पर विचार किया गया है– मन द्रव्य है।[10] प्रति शरीर में एक मन है। आत्मा इन्द्रियों तथा घटपटादि अर्थों का युगपत् सम्बन्ध होने पर भी जो एक विषय में ज्ञान का सद्भाव तथा अन्य विषय में असद्भाव होता है वह मन की सिद्धि में लिङ्ग है। मन के संयोग से आत्मा का प्रत्यक्ष होता है।[11] मानसिक क्रियाओं का कारण आत्मा है। सुख एवं दुःख आत्मा, इन्द्रिय, मन और अर्थ के सन्निकर्ष से होते हैं। आत्मा और मन का इन्द्रियों से प्रत्यक्ष नहीं होता। मन का परिमाण अणु है।[12]

सांख्य सिद्धान्तानुसार प्रकृति का महत् नामक जो कार्य उत्पन्न हुआ है वह मन है।[13] यह संकेत समष्टि मन की ओर है। व्यष्टि मन पृथक् है एवं वह संकल्प–विकल्प करने वाली इन्द्रिय है। मन का सम्पर्क ज्ञानेन्द्रिय तथा कर्मेन्द्रिय दोनों से होने के कारण यह मन उभयात्मक है। इसकी उत्पत्ति का मूल कारण प्रकृति है। सत्त्व, रजस् तथा तमस् की साम्यावस्था प्रकृति है, प्रकृति से महत्तत्त्व, महत्तत्त्व से अहंकार और अहंकार से पाँच तन्मात्राएँ, ज्ञानेन्द्रियाँ तथा कर्मेन्द्रियाँ एवं मन की उत्पत्ति होती है।

मन सूक्ष्म शरीर का एक घटक है।[14] प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा तथा स्मृति ये मन की पाँच वृत्तियाँ हैं।[15] योगसूत्र प्राचीन मनोविज्ञान है। इसकी विशेषता यह है कि इस शास्त्र के सम्यक् ज्ञान से मानव जीवन के पुरुषार्थ चतुष्टय की सिद्धि और चरम लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति का मार्ग सरलतम और सुगम हो जाता है। योगसूत्र मन पर लिखा गया एक स्वतन्त्र ग्रन्थ है। जिसमें मन के लिए चित्त शब्द का प्रयोग है।[16]

ब्रह्मसूत्र में उल्लिखित है– पुरुष के प्रयाण करने के समय वाणी मन में विलीन हो जाती है, मन प्राण में, प्राण तेज में तथा तेज देवता में लीन होता है।[17] मन की वृत्तियाँ ही प्राण में विलीन होती है।

e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 02
January 2018

सुरेश्वराचार्य ने अन्तःकरण चतुष्टय का उल्लेख किया है। चेतन रूप चित्त है, संकल्प रूप मन है एवं निश्चय करने वाली बुद्धि है।[18]

पञ्चदशी में वृत्तिभेद से मन के दो भेद विमर्श रूप एवं निश्चयात्मिका बुद्धि रूप माना गया है।[19]

अद्वैत वेदान्त की परम्परा में ब्रह्म ही परमसत्य है। इसके अतिरिक्त अन्य कुछ भी सत्य नहीं। इस तरह मन की सत्ता भी भ्रम मात्र है, जो अज्ञान या भ्रम के कारण पैदा हुई है। माया द्वारा अनुकूलित मन ही जग का आधर है। आचार्य शंकर ने विविध कर्म विभाजन के कारण मन को– मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार यह नाम भेद स्वीकार किया है।[20] यह मन सूक्ष्म और आकार में सीमित है, मृत्यु के समय जब यह शरीर छोड़ता है तो दिखता नहीं है। यदि मन आकार में सीमित नहीं होता तो यह शरीर के अन्दर या बाहर आ–जा नहीं सकता था। मन की सत्ता भौतिक है एवं यह आत्मा के ज्ञान का एक यन्त्र है। इसके पाँच कार्य हैं– सही ज्ञान, विवेक, कल्पना, निद्रा और स्मृति।[21] अतः वेदान्त में मन या अन्तःकरण चेतना की अवस्थाओं की समग्रता का नाम भर है। वाणी को मन में, मन को बुद्धि में, बुद्धि को आत्मा में और आत्मा; साक्षीद्ध को पूर्ण ब्रह्म में लय करके परम शान्ति को प्राप्त करने की बात कही गई है।

बौद्ध दर्शन के चार सम्प्रदायों में विज्ञानवाद तो मन; बुद्धि को ही एकमात्र तत्त्व मानता है। विज्ञानवादी समग्र विश्व की व्याख्या इसी से करते हैं। बौद्ध धर्म के प्रसिद्ध ग्रन्थ ध्म्मपद में तृतीय वर्ग चित्तवग्गो के नाम से प्रसिद्ध है।[22] जैन दर्शन में ज्ञान उल्लेख प्रसंग में मन की सत्ता मानी गई है।[23]

मन के गुण, कर्म एवं स्वभाव –

सत्त्व, रज और तम में मन के तीन सामान्य गुण हैं। मन प्रकृति का विकार होने से सत्त्वादि गुणों वाला है। मन में जिस गुण की प्रधनता होती है, उसी गुण से मन को कहा जाता है। महाभारत में धैर्य, तर्क, उपपत्ति, स्मरण, भ्रान्ति, कल्पना, क्षमा, शुभ एवं अशुभ संकल्प और चंचलता इन नव गुणों से मन को युक्त कह गया है।[24]

आस्तिकता, अक्रूरता, सुख–दुःख आदि द्वन्द्वों को सहन करना, सत्य, धर्म, ज्ञान, बुद्धि, मेधा, स्मृति, धैर्य और अनभिषङ्ग= निरिच्छा पूर्वक अच्छे कार्यों को करना ये सात्त्विक मन के गुण हैं।

दुःख बाहुल्य, घूमने का स्वभाव, अधीरता, अहंकार, असत्यभाषण, क्रूरता, दम्भ, मान, आनन्द, विषय सम्बन्धी इच्छा और क्रोध ये राजस मन के युग हैं।

e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 02
January 2018

वेदादि को न मानना, खेद करना, काम करने की इच्छा न होना, बुद्धि का उपयोग न करना दुष्ट बुद्धि रहना, ज्ञान न होना, नींद लेने की इच्छा, मूढ़ता, सदैव क्रोध ये तामस मन के गुण हैं।

मन में इन प्राकृतिक गुणों के अतिरिक्त दो विशिष्ट गुण रहते हैं जिसे अणुत्व एवं एकत्व कहा जाता है।[25] परत्वापरत्वादि पञ्च वेगों का आधार भी मन है। जितने भी प्राकृतिक गुण एवं मानसिक दशायें है उनको पाश्चात्य मनस्तत्त्व वेत्ताओं ने संवेदन, संकल्प और विकल्प विचार के रूप में विभक्त किया है।

अमरकोष के धी वर्ग के अन्तर्गत बुद्धि, धी, मेध, चित्त के वर्णन के प्रसंग में संकल्प को मन का कर्म बताया गया है।[26] इन्द्रियाभिग्रह, स्वयं का निग्रह, उह्य एवं विचार मन के कर्म हैं।[27] परद्रोह करना, दूसरों के द्रव्यों को लेने की इच्छा और नास्तिकता ये मन के त्रिविध अशुभ कर्म हैं वैसे ही दया करना, स्पृहा न करना तथा श्रद्धा करना ये तीन मन के शुभ कर्म हैं।[28]

मन, वाणी तथा शरीर से जो कर्म होता है, उसके शुभ तथा अशुभ फल होते हैं। मन, वाणी तथा शरीर का अध्ष्ठिाता जीवात्मा है। जीवात्मा मन के द्वारा किये गए कर्मों का फल मन से ही भोगता है और मानस दुष्कर्मों के कारण चाण्डालादि का जन्म लेना पड़ता है।[29]

अन्य इन्द्रियों की अपेक्षा मन श्रेष्ठ है। मन इन्द्रियों द्वारा संचालित होकर सब विषयों की ओर जाता है। इन्द्रियाँ उन विषयों को नहीं देखती, मन ही उन्हें निरन्तर देखता है। चक्षु मन के सहयोग से ही रूप का दर्शन करती है, अपनी शक्ति से नहीं। जिस समय मन व्याकुल रहता है उस समय चक्षु देखता हुआ भी नहीं देख पाता है। भ्रम के कारण ही कहा जाता है कि सम्पूर्ण इन्द्रियाँ विषयों का दर्शन करती हैं। इन्द्रियाँ कुछ नहीं देखती केवल मन ही देखता है। मन विषयों से उपरत हो जाये तो इन्द्रियाँ भी विषयों से निवृत्त हो जाती है परन्तु इन्द्रियों के उपरत होने पर मन में उपरति नहीं आती इस कारण सम्पूर्ण इन्द्रियों में मन प्रधन है।

भारतीय शास्त्रों में मन का स्वरूप–

प्राचीन भारतीय मनोविद्या **में** मनस्तत्त्व की सत्ता को एक स्वर से भारतीय शास्त्रा तथा चिन्तक स्वीकार करते हैं। मन की चार अवस्थाएँ हैं– जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति तथा तुरीय। जाग्रत अवस्था में मन की वृत्ति चारों ओर फैली हुई होती है। मनुष्य जाग्रत अवस्था में देखता है, सुनता है, सूंघता है, चलता है। स्वप्न अवस्था में मनुष्य के अंग निश्चल हो जाते हैं। उसकी आँखें बन्द हो जाती हैं, कान आदि इन्द्रियाँ काम नहीं

e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 02
January 2018

करती, शब्द को वह सुन नहीं सकता, गंध को सूंघ नहीं सकता, हाथ पैर शिथिल पड़ जाते हैं। स्वप्नावस्था में आँखें बन्द होने पर भी वह देखता है– ठीक ऐसे देखता है जैसे खुली आँखों से देखता है। स्वप्नावस्था के बाद सुषुप्ति की अवस्था आती है। सुषुप्ति में सब ज्ञान लुप्त हो जाता है। मनुष्य छः, सात घण्टे की सुषुप्ति के बाद जब जागता है तब वह कहता है– सुखमहमस्वाप्सम्– मैं बड़े आनन्द में सोया। ऐसा सोया कि कुछ भी पता नहीं रहा कोई स्वप्न तक नहीं आया। यह चेतना जो सदा जागरूक रहती है वह शरीर के बन्धनों को लांघकर जब जाग्रतावस्था, स्वप्नावस्था तथा सुषुप्तावस्था को परे छोड़कर, शरीर के बन्धनों से छूटकर इनके परे की तुरीयावस्था में पहुँच जाती है तब चेतना अपने यथार्थ स्वरूप में आ जाती है। चेतना के इसी रूप को पा लेना भारतीय शास्त्रों का लक्ष्य है।

भौतिक मनोविज्ञान इन्द्रियों की आँखों से देखता है। वैदिक मनोविज्ञान मन तथा आत्मा के आँखों से देखता है। इन दोनों दृष्टियों की व्यावहारिक उपयोगिता में अन्तर देखने को मिलता है। मन तथा आत्मा तो अच्छेद्य है, अदाह्य है, अक्लेद्य है, अशोष्य है।

भारतीय अध्यात्म विद्या का कार्य मन के साथ जूझना है। कुरुक्षेत्र के मैदान में युद्ध क्षेत्र से श्रीकृष्ण ने मनोविज्ञान की भाषा बोलते हुए अर्जुन को स्थित प्रज्ञ का उपदेश करते हैं। यही भारतीयों का व्यावहारिक पक्ष है। वैदिक मनोविज्ञान संसार की सब समस्याओं को मन के क्षेत्र में लाकर रख देता है और यही कारण है कि वेदों से प्रेरित होकर भारत में योगदर्शन के नाम से एक शास्त्र का उदय हुआ जिसका काम ही मन को साधना था।

जीवन में मन का महत्त्व स्वीकार करने पर भी स्वाभाविक प्रश्न उठता है कि जिस मनस्तत्त्व का निरूपण किया जा रहा है वह मन प्रसिद्ध है अथवा अप्रसिद्ध, मन के विषय में क्या कोई सन्देह है अथवा नहीं? मनस्तत्त्व के स्वरूप के प्रतिपादन करने की इच्छा के मूल में क्या प्रयोजन है? क्योंकि जो वस्तु असंदिग्ध अथवा सन्देह रहित होती है अथवा जिसका प्रयोजन नहीं होता प्रेक्षावान् पुरुष उसके प्रतिपादन की इच्छा नहीं करते। यथा उज्ज्वल प्रकाश में विद्यमान घट जिससे मन और इन्द्रिय का सन्निकर्ष हो चुका है उस घट के विषय में किसी को सन्देह नहीं होता अतः ऐसा घट किसी भी बुद्धिमान पुरुष के प्रतिपादन की इच्छा का विषय नहीं होता। इसी प्रकार कौए के दाँत होते हैं अथवा नहीं? यह विषय किसी के लिए निष्प्रयोजन है तो वह पुरुष काकदन्त के प्रतिपादन में प्रवृत्त नहीं होता, परन्तु मनस्तत्त्व के विषय में सन्देह और प्रयोजन सिद्ध होते हैं।

e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 02
January 2018

मन प्रायः सामान्य रूप से प्रसिद्ध तो है किन्तु उसके विशेष स्वरूप के विषय में सन्देह होने के कारण और उसके यथार्थ स्वरूप का निश्चय न होने के कारण उसके विशेष स्वरूप की जिज्ञासा होना स्वाभाविक ही है। शोध शीर्षक में मनस् पद का प्रयोग न करके मनस्तत्त्व पद का प्रयोग विशेष अभिप्राय से किया गया है। तत्त्व शब्द की व्युत्पत्ति **तस्य भावः तत्त्वम्।** अतः शोध प्रबन्ध में न केवल मन के स्वरूप का ही वर्णन किया जायेगा अपितु मन के गुण, धर्म, तथा मन के क्रियाकलापों आदि मनोविषयक सभी तथ्यों पर प्रकाश डाला जायेगा, इसी अभिप्राय से मनस् के साथ तत्त्व पद का प्रयोग किया गया है।

विचार–विमर्श

मनस्तत्त्व की सत्ता को एक स्वर से भारतीय शास्त्रा तथा चिन्तक स्वीकार करते हैं। मन की चार अवस्थाएँ हैं– जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति तथा तुरीय। जाग्रत अवस्था में मन की वृत्ति चारों ओर फैली हुई होती है। मनुष्य जाग्रत अवस्था में देखता है, सुनता है, सूंघता है, चलता है। स्वप्न अवस्था में मनुष्य के अंग निश्चल हो जाते हैं। उसकी आँखें बन्द हो जाती हैं, कान आदि इन्द्रियाँ काम नहीं करती, शब्द को वह सुन नहीं सकता, गंध को सूंघ नहीं सकता, हाथ पैर शिथिल पड़ जाते हैं। स्वप्नावस्था में आँखें बन्द होने पर भी वह देखता है– ठीक ऐसे देखता है जैसे खुली आँखों से देखता है। स्वप्नावस्था के बाद सुषुप्ति की अवस्था आती है। सुषुप्ति में सब ज्ञान लुप्त हो जाता है। मनुष्य छः, सात घण्टे की सुषुप्ति के बाद जब जागता है तब वह कहता है– सुखमहमस्वाप्सम्– मैं बड़े आनन्द में सोया। ऐसा सोया कि कुछ भी पता नहीं रहा कोई स्वप्न तक नहीं आया। यह चेतना जो सदा जागरूक रहती है वह शरीर के बन्ध्नों को लांघकर जब जाग्रतावस्था, स्वप्नावस्था तथा सुषुप्तावस्था को परे छोड़कर, शरीर के बन्धनों से छूटकर इनके परे की तुरीयावस्था में पहुँच जाती है तब चेतना अपने यथार्थस्वरूप में आ जाती है। चेतना के इसी रूप को पा लेना भारतीय शास्त्रों का लक्ष्य है।

उपसंहार–

भारत में मनोविद्या का स्वरूप सदा आध्यात्मिक बना रहा है। शरीर तथा आत्मा के, शरीर तथा मन के भेद को अनुभव कर लेना इसका सार है। वेद, दर्शन, उपनिषद्, गीता आदि ग्रन्थ निरन्तर इस तत्त्व की प्राप्ति का उपदेश करते हैं। भारतीय विचारधरा का हर पहलू आत्मतत्त्व या मनस्तत्त्व के विचार से ओतप्रोत रहा है। यह विचार नहीं था जो घर में कुर्सियों पर लेटे–लेटे दिमागी पुलाव पकाने के लिए, समय काटने के लिए खोजा गया था। इस विचार की भारतीय जीवन पर अमिट छाप थी। वैदिक ऋषियों ने अपने पास

e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 02
January 2018

बत्तीस–बत्तीस वर्ष शिष्यों को रखकर तरह–तरह के प्रयोगों से, आश्रमों की प्रयोगशालाओं में उनके हृदय में इस बात की सत्यता उतार दी थी कि संसार में जो कुछ है इन्द्रियों का, शरीर का खेल नहीं, मन का खेल है। सांसारिक सुख–दुःख का अनुभव इन्द्रियाँ नहीं करतीं, शरीर नहीं करता, मन करता है।

भारत में मनोविद्या का स्वरूप सदा आध्यात्मिक बना रहा है। शरीर तथा आत्मा के, शरीर तथा मन के भेद को अनुभव कर लेना इसका सार है। वेद, दर्शन, उपनिषद्, गीता आदि ग्रन्थ निरन्तर इस तत्त्व की प्राप्ति का उपदेश करते हैं। भारतीय विचारधारा का हर पहलू आत्मतत्त्व या मनस्तत्त्व के विचार से ओत प्रोत रहा है।

सन्दर्भ सूची–

1. पुरुषस्य कर्त्तृत्वभोक्तृत्व सुखदुःखादिलक्षणः चित् धर्मः क्लेशरूपत्वाद्बन्धे भवति। तन्निरोधः जीवन्मुक्तिः। उ.सं., मुक्तिकोपनिषद् 2.1
2. उ.सं., महोपनिषद् 4/123
3. मन ज्ञाने, मनु अवबोधने, मन स्तम्भे, धातुपाठ 4–67, 8.9, 10–169
4. निरुक्त, महर्षि यास्ककृत नैगमकाण्ड 4/1/5
5. चित्तं तु चेतो हृदयं स्वान्तं हृन्मानसं मनः। अमरकोष 1/31 कालवर्ग
6. अतीन्द्रियं पुनर्मनः सत्त्वसञ्ज्ञकं चेत इत्याहुरेके। चरक, सूत्र स्थान 8:4
7. कठ. 3/6, 6/10
8. उ.सं., प्रश्नोपनिषद, प्रश्न–6, मुण्डक 2.1.3
9. पृथिव्यापस्तेजो............दिगात्मा मन इति द्रव्याणि। वैशे. 1.1.5
10. आत्मन्यात्ममनसोः संयोगविशेषादात्मप्रत्यक्षम्। वैशे. 9.1.11
11. तदभावादणुः मनः। वही, 7.1.23
12. महदाख्यमाद्यं कार्यं तन्मनः। सांख्य. 1.71
13. सप्तदशैकं लिङ्गम्। वही, 3.9

14. वही, 2.33
15. यो.सू. 1.2
16. अस्य सोम्य पुरुषस्य प्रयतो वाङ्मनसि संपद्यते मनः प्राणे, प्राणस्तेजसि, तेज परस्यां देवतायाम् इति। ब्रह्मसूत्रा 4.2.2
17. ज्ञानेन्द्रियाणि पञ्चैव पञ्चकर्मेन्द्रियाणि च। मनोबुद्धिरहंकारश्चित्तं चेति चतुष्टयम्। संकल्पाख्यं मनोरूपं बुद्धिनिश्चयरूपिणी। पञ्चीकरण वार्तिक, सुरेश्वराचार्य (उद्धृत वेदान्तसार से)
18. तैरन्तःकरणं सर्वेषुवृत्तिभेदेन तद् द्विध। मनो विमर्शरूपं स्यात् बुद्धि स्यान्निश्चयात्मिका। पञ्चदशी, तत्त्व विवेक प्रकरण, श्लोक–20
19. ब्रह्मसूत्र, शांकर भाष्य 2/3.32, 2/4.6
20. वही, 2.4.12
21. धम्मपद, चित्तवग्गो–1
22. तत्त्वार्थ सूत्रा, 1.9
23. धैर्योपपत्तिव्यक्तिश्च विसर्गः कल्पना क्षमा। सदसच्चाशुता चैव मनसो नव वै गुणाः। महा. शान्ति 255. 9
24. अणुत्वमथचैकत्वं द्वौ गुणौ मनसः स्मृतौ । च.शा.1.19
25. बुद्धिमनीषा धिषणा धीः प्रज्ञा शेमुषी मतिः। प्रेक्षोपलब्धिश्चित्संवित्प्रतिपज्ज्ञप्तिचेतनाः। धीर्धारणावती मेधा संकल्पः कर्ममानसम्। अमरकोष, प्र.का. 1 धी वर्ग
26. इन्द्रियाभिग्रह कर्म मनसस्तस्य निग्रहः। ऊहो विचारश्च ततः परं बुद्धि प्रकाशते। च.शा. 1–2
27. मनसा परद्रोहं परद्रव्याभीप्सां नास्तिक्यं चेति। (शुभाप्रवृत्तिः) मनसा दयामस्पृहा श्रद्धा चेति। न्याय. 1. 1.2 वात्स्यायन भाष्य
28. मानसं मनसैवायमुपभुघ्क्ते शुभाशुभम्। मानसैरन्त्यजातिताम्। मनु. 12.8.9